सबला

वर्ष 9 : अंक 6 | जागोरी, नई दिल्ली | फरवरी-मार्च, 1998

जागोरी
JAGORI

संपादक समूह
कमला भसीन
शारदा जैन
वीणा शिवपुरी
जुही जैन
सुनीता ठाकुर

सहयोग
जागोरी समूह

चित्रांकन
रीटा अग्रवाल (मुखपृष्ठ)
राजेश

प्रकाशन
गीता भारद्वाज, जागोरी

वितरण
प्रतिभा गुप्ता

ग्रामीण बहनों की द्विमासिक पत्रिका शिक्षा विभाग, मानव संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा अनुदानप्रदत्त, सुश्री गीता भारद्वाज (जागोरी, सी-54 साउथ एक्सटेंशन-II, नई दिल्ली-110049) द्वारा प्रकाशित। वितरण कार्यालय, 1, दरियागंज, नई दिल्ली-110002। इन्द्रप्रस्थ प्रेस (सी.बी.टी.), 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली-110002 में मुद्रित।

इस अंक में

हमारी बात 1

लेख

आठ मार्च : हमारा दिन-हमारा त्यौहार —कमला भसीन 3

औरत की छवि—भाषा, संस्कृति और व्यवहार —जुही 7

संचार माध्यमों में औरतें —वीणा शिवपुरी 10

आज़ादी की लड़ाई में महिलाओं का योगदान —मधु और भारत डोगरा 12

विकास कार्यक्रम और स्थानीय सामाजिक कार्यकर्त्ता —सुहास कुमार 15

कहानी

तीन जुझारू औरतें
- गौतमी —जुही 20
- सावित्री फुले 23
- अज़ीज़न —साभार : *उम्मीद* 25

'हम चुप नहीं रहेंगे'? —सुनीता ठाकुर 27

कविता

तन्हाई —शुमिता 10

घास और औरत —प्रीता व्यास 18

बेटियां —हरीश अरोड़ा 18

मेरा पता —अमृता प्रीतम 19

आकांक्षा —मीना 19

कानून और अधिकार

मानव अधिकार और महिलाएं —सुहास कुमार 29

स्वास्थ्य

संतुलित आहार जरूरी : औरतों के लिए भी 32

हमारा पन्ना

लड़की लड़का एक समान —कमला भसीन 35

पूर्वजों की सीख —सतीशराज पुष्करणा 35

लड़कियां सवाल पूछ रही हैं —जुगमिन्दर तायल 36

हमारी बात

लगभग 70 साल पुरानी बात है, लेकिन आज भी उसका महत्व कम नहीं हुआ। यह सही है कि समाज में जागरूकता बढ़ी है, लेकिन मंजिल अभी भी बहुत दूर है।

पंजाब के एक शिक्षित, आर्थिक रूप से संपन्न और संभ्रात परिवार में एक लड़की पैदा हुई। उस समय जचगी घरों में ही होती थी और दाई यह काम करवाती थी। लड़की को देखते ही दाई ने माथा ठोका और कहा, "लो, एक पत्थर और आ गया।" परिवार में तीन साल की एक लड़की और थी। पहली लड़की तो लक्ष्मी कहलाती है, लेकिन दूसरी—पत्थर।

इस 'पत्थर' के मां-बाप शिक्षित थे और उन्होंने इस 'पत्थर' को सड़क के किनारे का बेकार समझा जाने वाला पत्थर नहीं माना। कुशल कारीगरों की तरह उन्होंने पत्थर को तराशा, चमकाया और समाज में उसे उच्च स्थान दिलवाया।

यह सुनी-सुनाई काल्पनिक कहानी नहीं। यह हमारी निजी अनुभूति है क्योंकि वह 'पत्थर' जन्मी लड़की मैं ही हूं।

आज भी हजारों-लाखों परिवारों में लड़की को बोझ मान उसके पैदा होते ही मायूसी छा जाती है। एक प्रचलित धारणा है कि 'लड़की तो दूसरे घर का पौधा है, उसे सींचने और मज़बूत करने पर मेहनत क्यों की जाए और फिर लड़कियां तो झाड़-फूस की तरह बढ़ती हैं, ध्यान दो या नहीं।

लड़की के जन्म से ही उपेक्षा, उसे लड़के की तुलना में कम ध्यान देना, शिक्षा इतनी कि अच्छा घर-वर पा ले, यह मानसिकता आज भी हमारे अधिकांश घर-परिवारों में है। यदि शुरू से ही लिंग-भेद के शिकार हुए बिना लड़के व लड़की का एक बराबर लालन-पालन हो, दोनों की सेहत का, शिक्षा का बराबर ध्यान रखा जाए तो लड़कियों की प्रतिभा मुखर होगी और वह समाज के विकास में भरपूर योग देगी।

शारदा जैन

बड़ा मजा आये

अपना दिन हम मनायें तो बड़ा मज़ा आये
इसे त्यौहार बनायें तो बड़ा मज़ा आये
सखियां मिलजुल गायें तो बड़ा मज़ा आये
मौज मस्ती मनायें तो बड़ा मज़ा आये।

संग सखियन हम मेले जाएं
अपने जीवन में रौनक बढ़ायें
चूल्हा चौका भुलायें तो बड़ा मज़ा आये।

संग सखियन हम पींगे चढ़ायें
सारे पिंजरों से पीछा छुड़ायें
हम भी पर फैलायें तो बड़ा मज़ा आये
हम सब ऊंची उड़ पायें तो बड़ा मज़ा आये।

संग सखियन कानूनवा बनायें
हक बराबर के सब को दिलायें
जायदाद बेटी भी पाये तो बड़ा मज़ा आये
बिटिया मालिक बन जाये तो बड़ा मज़ा आये।

(लोकगीत "नथनिया दैय्या हाले" की धुन पर आधारित)

कमला भसीन

आठ मार्च : हमारा दिन-हमारा त्यौहार

कमला भसीन

हर साल आठ मार्च के आसपास देश ही नहीं, दुनिया के हर कोने में औरतें अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाने की तैयारियां करने लगती हैं। जैसे एक मई दुनिया के मज़दूरों का दिन है, मज़दूरों की एकता, उनके संघर्षों, उनके योगदान का दिन है, उसी तरह आठ मार्च दुनिया की औरतों का दिन है, औरतों के संघर्षों को याद दिलाने वाला दिन है। इस दिन हम गुनगुनाने और गाने लगते हैं–

अपना दिन हम मनायें तो बड़ा मज़ा आए
इसे त्यौहार बनायें तो बड़ा मज़ा आए
सखियां मिल जुल गायें तो बड़ा मज़ा आए
मौज मस्ती मनायें तो बड़ा मज़ा आए।

आठ मार्च को अपना त्यौहार मनायें, इस दिन खुशी मनायें, इस एक दिन कम से कम चूल्हा चौका भुलायें, अपने पंख फैलाने की कसमें खायें, ऊंचे उड़ पाने की कसमें खायें।

आठ मार्च हमारे इतिहास और भविष्य से जोड़ने वाला दिन

इस दिन हम नए सिरे से औरतों की हालत, उनकी स्थिति का जायज़ा लेते हैं। देखते और सोचते हैं कि बराबरी और इन्साफ़ की लड़ाई में हम कहां पहुंचे हैं। इस दिन हम फिर एक बार याद करते हैं उन औरतों को जिन्होंने हर सदी में, हर पीढ़ी में, अपने तरीक़े से औरतों की मर्यादा

आठ मार्च हमारा अपना दिन। दूसरों के लिए उपवास नहीं अपने लिए खुशियां मनाने का दिन अपनी तरह, अपने उसूलों पर जीने की आशाओं का दिन। आओ सोचें कि हमने क्या खोया क्या पाया –

हम क्या थे, क्या हो गए हैं
और क्या होंगे अभी
आओ मिलकर आज विचारें
ये समस्याएं सभी।

के लिए कदम उठाये, औरतों के स्थान, उनकी पहचान, उनके मान के लिए कदम उठाये। आठ मार्च हमें जोड़ता है हमारी, माओं से, नानियों, दादियों से। आज अगर औरतों को कुछ अधिकार हैं, सिर उठाकर खड़े होने की हिम्मत है, आवाज़ उठाने की ताक़त है तो 'वह इसलिए कि हमारे लिए' औरों ने संघर्ष किए, रास्ते बनाएं। यह दिन हमें याद दिलाता है मीरा की, राबिआ की, सैकड़ों औरतों, भिक्खुनिओं की जिन्होंने धर्मों में अपने लिए जगह मांगी और बनाई। यह दिन हमें याद दिलाता है रज़िया सुलताना और झांसी की रानी की जिन्होंने राजनीति में, राज्यों को चलाने में अपने कमाल दिखाए। आठ मार्च हमें याद दिलाता है उन करोड़ों किसान और मज़दूर बहनों की जो हर सदी में, हर समाज की जड़ें रही हैं, जिनकी मेहनत के बल पर सब समाज चलते रहे हैं और चल रहे हैं। यह दिन हमें जोड़ता है उन करोड़ों औरतों से जो घर और गृहस्थियां चलाती रही हैं, जो नई पीढ़ियों को जन्म देती आई हैं, जो नई ज़िन्दगियां बनाती आई हैं। 8 मार्च का दिन हमें याद दिलाता है उन करोड़ों दस्तकार बहनों की जिन्होंने आम इस्तेमाल की चीज़ें बनाई और उनमें रंग भरे, खूबसूरती भरी–चाहे वो झाड़ू हो, या मटके, कपड़े हों या टोकरियां, चटाईयां हों या बर्तन, जेवर हों या चुटीले। कितने रंग, कितनी उमंगे, कितना जीवन, कितना सौन्दर्य रचा है हम औरतों ने।

आठ मार्च हमें अपने इतिहास, अपने पुरखों से ही नहीं जोड़ता, यह हमें हमारे भविष्य से भी जोड़ता है। हम मायें, मासियां, नानियां, दादियां हैं जो आने वाली बच्चियों के लिए रास्ते बना

रही हैं। हमारे काम, हमारे संघर्ष तय करेंगे आने वाली पीढ़ी के रास्ते। हमारी बोई हुई फ़सलें हमारी बच्चियां काटेंगी। हमारे बनाए रास्तों पर वो चलेंगी। अगर हम कुछ कर गुज़रे तो हमारा इतिहास लिखेंगी हमारी बच्चियां। जैसे हम आज सैकड़ों साल पहले की औरतों को याद करते हैं आने वाली पीढ़ियां हमें याद करेंगी।

आठ मार्च का इतिहास

जिन्हें नहीं पता, उनके मन में यह सवाल उठ सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस, यानी हमारा दिन आठ मार्च को ही क्यों मनाया जाता है। इसका भी लगभग डेढ़ सौ साल पुराना इतिहास है। अन्तर्राष्ट्रीय दिन तभी मनाया जा सकता है जब अलग-अलग देशों में सम्पर्क हो, लेना देना हो, आना जाना हो। जब अलग-अलग देशों में औरतों में हलचल हो, औरतों की औरत के रूप में पहचान हो, उनकी औरत होने के नाते समस्याएं और संघर्ष हों।

तो बात 1857 की है। वही 1857 जब हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ जंग छिड़ी थी। उसी वर्ष में अमरीका की मज़दूर औरतें कपड़ा फैक्टरी या मिल मालिकों के शोषण के खिलाफ़ लड़ रही थीं। आठ मार्च 1857 को अमरीका की कपड़ा मिलों की मज़दूर औरतों ने काम बन्द किया और सड़कों पर निकल आईं। उस समय उनसे 16 घंटे काम लिया जाता था। एक दिन में सोलह घंटे, ज़रा सोचिए। सोचना भी मुश्किल है आज। सुबह छः बजे से रात के दस बजे तक। (वैसे आज भी घरों में काम करने वाली "नौकरानियां" सोलह-सोलह घंटे, हफ़्ते में सातों दिन काम करती हैं। अमरीका में हुए संघर्षों का व भारत में हुए मज़दूरों के संघर्षों का फ़ायदा अभी उन तक नहीं पहुंचा है। इन घरेलू "नौकरानियों" की लड़ाईयां अभी होनी हैं) उन अमरीकी औरतों ने मज़दूरी के घंटों को 16 से 10 करने की मांग की। उन मज़दूर बहनों की संगठित लड़ाई की आवाज़ गूंजी होगी और औरतों के संघर्ष ने एक चमक पैदा की होगी।

उस चमक, उस जोश को 1910 में याद किया रूस की समाजवादी नेता कलारा ज़ेट किन ने। 1910 में एक अन्तर्राष्ट्रीय समाजवादी महिला अधिवेशन में रूस की क्रान्तिकारी नेता कलारा ज़ेट किन ने यह प्रस्ताव रखा कि आठ मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया जाए। उन्होंने आज से लगभग अस्सी साल पहले दुनिया भर की औरतों को एक जुट होकर युद्ध के खिलाफ आवाज़ उठाने को ललकारा था। उन्होंने औरतों से कहा था कि हम औरतों को अपने बीच युद्धों की दीवारें नहीं खड़ी होनी देनी चाहिए। अगर पुरुष युद्ध करने में लगे हैं, मारने मरने में लगे हैं तो औरतों को शान्ति के लिए लड़ना चाहिए।

1911 से 1915 तक यूरोप के कई देशों में औरतों ने आठ मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया। रूस में 1913 में पहली बार मॉस्को के एक महिला समूह ने आठ मार्च को मनाया। 1914 में कुछ समाजवादी महिलाओं ने रूस के सैंट पीटर्स बर्ग में आठ मार्च के दिन एक पत्रिका निकालनी शुरू की जिसका नाम था राबोनीत्सा या महिला मज़दूर।

मार्च 1915 में औस्लो, नौर्वे में औरतों ने प्रथम विश्वयुद्ध के खिलाफ़ प्रदर्शन किया। 8 मार्च 1917 को रूसी क्रान्ति औरतों की रोटी की मांग के साथ शुरू हुई।

आठ मार्च 1937 को स्पेन की महिलाओं ने वहां

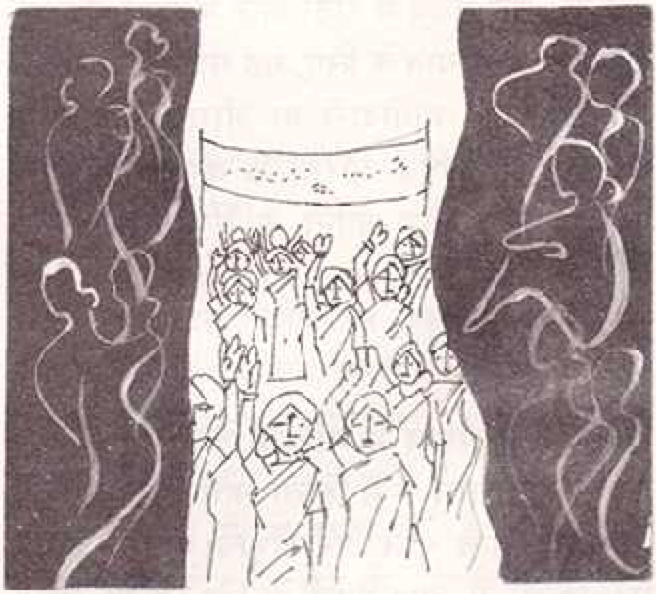

के तानाशाह फ्रैन्को के अत्याचारी शासन के ख़िलाफ़ जुलूस निकाले। आठ मार्च 1943 को इटली की औरतों ने मुसोलिनी की तानाशाही का विरोध किया।

आठ मार्च का है
यह नारा
साल का हर दिन
हो हमारा।

आठ मार्च 1974 में वियतनाम की औरतें इकट्ठी होकर सड़कों पर निकल आईं। आठ मार्च 1979 को 'ईरान' की औरतों ने ख़ोमेनी की औरत विरोधी नीतियों के खिलाफ़ एक बड़ा जुलूस निकाला। कहते हैं उस दिन क़रीब 50,000 औरतें थीं इस जुलूस में।

इस तरह की सैकड़ों और कहानियां लिखी जा सकती हैं जो हमें बताती हैं औरतों के संघर्षों के बारे में। यह संघर्ष थे रोटी और मज़दूरी के लिए, समानता और न्याय के लिए, यह संघर्ष थे राजनीति में बराबर की भागीदारी या औरतों के वोट के अधिकार के लिए। औरतों के बहुत सारे संघर्ष रहे हैं अमन और शान्ति के लिए। हर जगह औरतों ने शान्ति की बात की, अमन का परचम (झंडा) फहराया।

दिल्ली और भारत में महिला दिवस

पिछले बीस साल से मैं हिस्सा लेती रही हूं दिल्ली में मनाए जाने वाले अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस में। दिल्ली में आठ मार्च के दिन अलग-अलग महिला समूह व संस्थाएं मिलकर अपना दिन मनाती रही हैं। कई हज़ार औरतें आठ मार्च को जुलूस निकालती हैं, गाने गाती हैं और अपनी बात औरों से कहती हैं। यह बात हम नाटकों, गानों, पर्चों, नारों और भाषणों के ज़रिए कहती आई हैं। हर साल हम कुछ खास मुद्दे उठाते आए हैं, ये मुद्दे उस साल के हालात से जुड़े होते हैं। किसी वर्ष हमने बलात्कार का मुद्दा उठाया और औरतों पर होने वाली यौनिक हिंसा की बात की। जिस साल मंहगाई की बात सबके होठों पर थी उस साल हमने मंहगाई के ख़िलाफ़ आवाज उठाई, सरकार की आर्थिक नीतियों का जायज़ा लिया, उस पर अपने विचार रखे और हमारी नज़र में जो नीतियां ग़लत थीं उनका विरोध किया। जब कुछ ख़ास राजनैतिक दलों ने देश में धर्म के नाम पर दंगे फ़साद करवाए, हिंसा फैलाई, हिन्दुओं और सिक्खों, हिन्दुओं-मुसलमानों को लड़वाया, हमने इस सबके ख़िलाफ आवाज़ उठाई है, हमने धार्मिक सद्भाव की बात की। अपनी सबरंगी सभ्यता और संस्कृति की बात की।

सड़कों पर आकर हज़ारों औरतों ने मिलकर कहा "मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना"

बड़े जुलूस की तैयारी के लिए और अलग-अलग बस्तियों में महिला दिवस का संदेश ले जाने के लिए हर साल छोटे-छोटे जुलूस जलसे शहर के कई भागों में किए जाते हैं। महिला समूह अपने-अपने इलाक़ों में अलग-अलग कार्यक्रम करते हैं। इसके अलावा दिल्ली के समूह अपने पर्चे, कार्यक्रम की रूपरेखा, देश के और महिला समूहों को भी भेजते आए हैं। यह हम इस उम्मीद में करते हैं कि अगर देश के कई कोनों से एक ही आवाज़ गूंजेगी तो वह अधिक सशक्त होगी।

आज जहां भी औरतों के समूह हैं, कार्यक्रम हैं, जहां भी औरतें संगठित हैं आठ मार्च का त्यौहार

(क्रमशः पृष्ठ 22 पर)

आठ मार्च : हमारा दिन-हमारा त्यौहार

(पृष्ठ 6 का शेष)

मनाया जाता है, अपनी एकता का इज़हार किया जाता है, अपनी एकता और शक्ति का अहसास किया जाता है। इस दिन साथ मिलकर हम नए सिरे से संकल्प करते हैं समानता, समता, न्याय, अहिंसा, अनेकता के लिए जद्दोजहद करने के लिए; अपने दिलों में आशा के दीप जलाए रखने के लिए। 1998 के महिला दिवस की आप सब को मुबारक। हम जहा भी हों चाहे दो चार के साथ, या सौ हज़ार के साथ अपने दिन मनाएं, एक दूसरे से शक्ति पाएं और ऐसा कुछ गाएं, गुनगुनाएं–

तुम्हारा साथ मिलने से अहसासे कुव्वत आया है
नई दुनिया बनाने का जुनूं फिर हम पे छाया है। ☐

औरत की छवि–भाषा, संस्कृति और व्यवहार

जुही

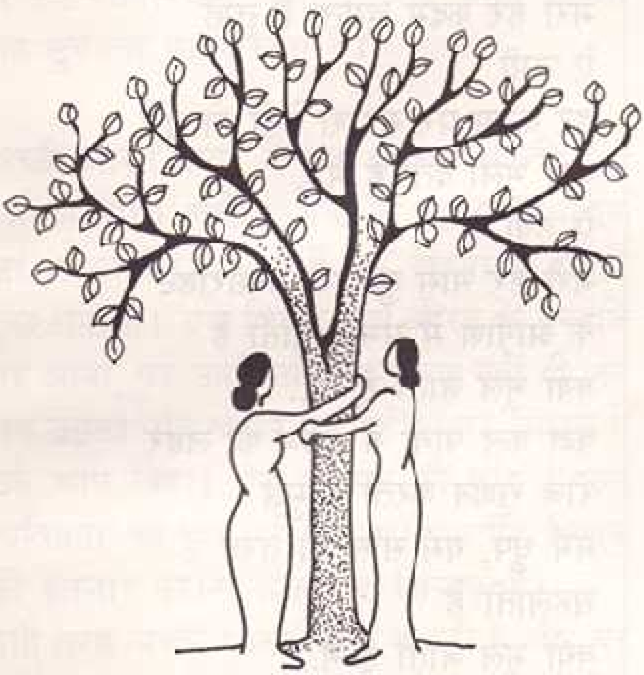

अब अच्छी औरत की परिभाषा हमें खुद गढ़नी होगी और यही सच्चाई समाज को स्वीकारनी होगी क्योंकि मूल धुरी को नकार कर विकास का दंभ नहीं भरा जा सकता यह धुरी हम औरतें ही हैं।

चाहे हम सदियों पुरानी रामायण-महाभारत की कथाएं देखें, चाहे बीसवीं सदी की प्रचलित कहावतें। एक चीज़ दोनों समय में समान है। वह है समाज की नज़र में औरत का मान्य रूप। रामायण में औरत को झूठी, मक्कार, लालची, बिना सोचे काम करने वाली कहा गया है। महाभारत में लिखा है, "एक सौ जबानों वाला आदमी, अगर एक सौ सालों तक जीवित रहे और पूरा जीवन सिर्फ स्त्री के दोष गिनने में लगाए तो भी वह सारे दोष नहीं गिन पाएगा"।

मनुस्मृति कहती है 'अगर पति में कोई सदगुण न हो, अगर पति मे हजारों अवगुण हों तो भी स्त्री को चाहिए कि वह इसे नज़रअंदाज करे। अपने पति को भगवान समझकर पूजा करे। तभी उसे स्वर्ग नसीब होगा।

भाषा, कहावतों, बोलचाल तक...

जगह-जगह प्रचलित कहावतों और भाषा को अगर ध्यान से सुनें तो उनमें भी कुछ ऐसी ही छवि उभरती है।

'पांच बेटियां हों तो राजा भी रंक हो जायेगा'।

'बेटे को भरपेट खा लेने दो, उसकी पत्नी उसकी बची झूठन से पेट भर लेगी'।

'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब तारण के अधिकारी'

'औरत के चार लाख अवगण होते हैं, सदगुण

केवल तीन होते हैं।'

'पति का मान होना ही चाहिए, चाहे वह पत्थर या तिनके समान ही क्यों न हो।'

बंगाल, गुजरात, कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब जगह यही चलन है। यानि औरत वही है—बोझ, झूठी, चालाक, बद्‌दिमाग और न जाने क्या क्या। लोक गीतों और लोककथाओं का हाल भी कुछ ऐसा ही है। उनकी भाषा हमारे रोजमर्रा के जीवन में उतर जाती है और अपनी पकड़ मजबूत बनाती है।

संस्कृति और रिवाज़ों से

रीति रिवाज़ और संस्कृति को ही देखें तो एक 'अच्छी औरत' की सधी हुई छवि सामने आती है। यह छवि हर समाज, भाषा, धर्म के बंधन चीरती हुई होती है, हर जगह मान्य। अच्छी औरत वही है जो खुद को ढंककर रखे, हाथ, पैर, कमर, सिर पर कपड़ा रखे, बड़ों का आदर करे। ख़ासकर मर्दों का, देश के कुछ भागों में ससुर-जेठ के सामने जाने पर सिर पर पल्ला या घूंघट ओढ़ने का चलन है। जो औरत इसे नहीं मानती वह बेहया कहलाती है। जबकि मर्दों के लिए पहनावे में कोई ठोस नियम कायदे नहीं हैं। इस तरह अगर लड़की पैंट या बिना बाजू का ब्लाउज पहनती है तो कहा जाता है वह पश्चिम की नकल कर रही है। हां मर्द चुस्त जींस, निकर पहन सकता है।

पहनावे, बोलचाल, व्यवहार में

पहनावे में ही नहीं बैठने, चलने, बोलने के ढंग भी मर्द और औरत के लिए अलग-अलग हैं। औरत को 'धीरे बोलना चाहिए' 'कम बोलना चाहिए'। वह लड़की जो पेड़ पर चढ़े, साइकिल चलाए, दबंग हो उसे 'मर्दाना' करार दिया जाता है। उसे 'हंटर वाली', मर्द सिंह कहा जाता है।

हां, अगर छप्पर पाटने को और अगर सीढ़ी पर चढ़कर पति का सहयोग करे तो यह उसका धर्म है। पति के दोस्तों से हंस-बोल ले तो बदचलन, आवारा हो और पति की मौज़ूदगी-ग़ैर मौज़ूदगी में उन्हें खाना-चाय पिला दे, आव-भगत करे तो यह सुघड़ता का परिचय है।

अच्छी औरत दायरे में कुछ भी कर सकती है

'अच्छी औरत' चाहे तो प्रचलित कायदे के ख़िलाफ़ जा सकती है। शास्त्रों में एक किस्सा है जिसमें कुछ ऐसा है। एक भिक्षुक एक औरत के दरवाजे पर आया, पर उसने उसे भिक्षा तक नहीं दी जब तक उसका पति खाकर उठ नहीं गया। भिक्षुक ने उसे श्राप दिया। पर भगवान की कृपा से उस 'पतिव्रता' का कुछ नहीं बिगड़ा। हालांकि भिक्षुक को इंतजार कराना शास्त्रों के ख़िलाफ़ है।

इसी तरह अच्छी औरत खाना बनाती है और घर के सब लोगों को खिलाकर बचा-खुचा खाती है। न बचे तो भूखी सो जाती है। नौकरी पेशा औरतें नौकरी तो कर सकती हैं, पर मर्द साथियों के साथ रात को बाहर नहीं जातीं। अगर वह जाती हैं तो ज़रूर उनके चरित्र में कोई लांछन लगाया जाता है।

दो छोर-दो जवाब

इतना सब जानने-समझने-सुनने के बाद, सवाल उठता है—इन सभी पहचानों, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचानों के जवाब में क्या हुआ है। क्या-क्या कदम उठाए गए हैं और आगे क्या करना है। जवाब है— दो मुख्य परस्पर विरोधी धारणाएं नज़र आती हैं। एक हाथ पर है विरोध, नारी आंदोलन, नारीवाद का। इन रिवाजों, भाषाओं के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का। चेतना का, उठकर मुकाबला करने का। बंधन तोड़ने का। दूसरी ओर है—मौज़ूदा छवि को बरकरार रखने का। उससे फ़ायदा उठाने का। तभी तो राजनीति में नेता औरतें सिर ढककर, साड़ी पहन, अच्छी औरत की छवि को प्रोत्साहित करती हैं। साथियों को 'भाई साहब' बनाती हैं, दोस्त नहीं। सौंदर्य प्रतियोगिता में जिस्म दिखाती सुन्दरियां, निश्चित जवाब देती हैं। जैसे सुष्मिता सेन कहती है औरत वही है जो मर्द को सिखाए, देखभाल करना, बांटना और प्यार करना। औरत का मूल स्वरूप यही है और इस जवाब के बदले उसे विश्व सुंदरी का खिताब मिलता है। जिस्म की प्रदर्शनी पर वाह-वाह और दौलत मिलती है। सुर्खियों में नाम आता है, और राष्ट्रपति की बग्गी में सवारी नसीब होती है।

जरूरी क्या है

ऐसे माहौल में ज़रूरी है— अपनी कोशिशें ज़ारी रखना। सभाओं, मीटिंगों में एक दूसरे से अपने विचार बांटना। अपने घरों से शुरु करके, बाहर तक स्त्री-पुरुष के बीच फ़र्क की खाईयों को पाटने का प्रयास करना। अपनी कहना, दूसरों की सुनना। (पितृसत्तात्मक समाज ने अपने राज को कायम रखने के लिए ही भाषा, संस्कृति, रिवाज़ों के दायरे में 'अच्छी औरत' की छवि गढ़ दी। उसकी नाक में नकेल डाल दी। बस उनका मकसद निकल गया। हम फंस गए।) पर सोचना यह है कि हमारी पहचान क्या हो, हमारी छवि क्या हो, यह कोई और क्यों तय करे, हम क्यों नहीं? □

तन्हाई

शुमिता

मेरा हर कदम चूमता है तुम्हें
ऐ ज़मीं
हर कदम पर सहारा देती हो तुम
क्यों भुला देती हूं मैं...
ऐ हवा
मेरी हर सांस तुम्हारी सरसराहट
के आग़ोश में संभल जाती है
क्यों भूल जाती हूं मैं...
कल कल पानी में सूरज की लहर
रोज रोशन करती है मुझे
नर्म धूप, गर्म सांस की तरह
सहलाती है
क्यों भूल जाती हूं मैं...
सितारों जड़ी रात
अपनी गहरी दिशाओं के–
अहसास में
मुक्त करती है मुझे
फिर क्यों
अक्सर ये सब भूल जाती हूं
मैं।

संचार माध्यमों में औरतें

वीणा शिवपुरी

संचार माध्यम लोगों तक लोगों की जुबान में उन्हीं की समस्याओं के हल और सुझाव पहुंचाने का ताक्तवर ज़रिया है इसलिए ज़रूरी है कि महिलाओं के विकास में उनका भरपूर उपयोग किया जाए।

संचार माध्यम लोगों तक पहुंचने का ज़रिया है व एक सशक्त माध्यम हैं। इसलिए यह अहम है कि लोगों तक क्या बात पहुंचाई जा रही है। उस बात का लोगों पर कैसा असर पड़ रहा है। यह एक दोधारी तलवार है। इससे फ़ायदा और नुकसान दोनों हो सकते हैं।

पहले संचार माध्यमों का दायरा काफ़ी छोटा था। छपी हुई सामग्री पढ़ने वाले सीमित थे। कुछ फ़िल्में तथा रेडियो आदि अन्य साधन थे। आज तो संचार माध्यमों की बाढ़ सी आ गई है। वे आंखों व कानों के द्वारा लगातार लोगों के दिमाग पर असर डाल रहे हैं। ख़ासतौर पर किशोर वर्ग के दिमाग पर। साक्षरता दर भी ऊंची उठी है। लोग संचार माध्यमों का ज़्यादा इस्तेमाल कर रहे हैं। अखबारों, पत्र-पत्रिकाओं के अलावा हर भाषा में फ़िल्में बनती हैं। विदेशी चैनल, टी.वी. के द्वारा घर-घर में पहुंच रहे हैं। उपभोक्तावाद के चलते हर कोई टी.वी. खरीदना चाहता है। छपे हुए शब्दों की तुलना में ये बोलती तस्वीरें ज़्यादा गहरा प्रभाव डालती हैं। ऐसी हालत में यह और भी महत्वपूर्ण हो जाता है कि वे क्या दिखा रहे हैं। महिला आन्दोलन ने कई बार यह सवाल उठाया है। संचार माध्यम, जो आन्दोलन को आगे बढ़ाने में मदद भी दे सकते हैं, वही उसकी प्रगति में रुकावट भी बन सकते हैं।

कुछ खोज-परख

कई अध्ययनों से यह साबित हो चुका है कि संचार माध्यम लोगों की सोच को प्रभावित करते हैं। उस सोच का असर समाज और औरतों के जीवन पर पड़ता है। विदेशी संचार माध्यमों के आने से पहले भी हमारे माध्यम औरतों को रूढ़िवादी नज़र से देखते थे। जिसमें औरत घर की इज्जत होती है। उसकी लक्ष्मण रेखा घर की दहलीज़ है। दूसरी ओर औरत वेश्या भी है।

जिस पर हर एक का हक है। उसका काम पुरूषों को लुभाना है। यानि औरत के दो अतिवादी रूप देवी या वेश्या।

अखबारों की रिपोर्टिंग, पत्रिकाओं की कहानियां, फिल्मों के चरित्र इसी फ़ार्मूले पर बनते थे। औरतों को एक स्वस्थ-स्वतंत्र सोच वाली व्यक्ति के रूप में नहीं देखा गया।

अर्थ का अनर्थ

आज विदेशी संचार माध्यमों के आने का सबसे गंभीर प्रभाव यह पड़ रहा है कि हर औरत को वेश्या का रूप दिया जा रहा है। वह भी आधुनिकता के नाम पर। औरत की स्वतंत्रता के नाम पर। आज यह कहा जा रहा है कि औरत को आज़ादी होनी चाहिए अपने शरीर प्रदर्शन की, यौन वस्तु या पुरुष की दासी बनने की। आख़िर यह उसकी इच्छा का सवाल है।

समस्या आज पहले से कहीं गंभीर है, क्योंकि अब ज़हर की गोली चाशनी में लपेट दी गई है। आज किशोरियां डाक्टर या अध्यापिका बनने के सपने कम ही देखती हैं। वे विश्व सुन्दरी बनना चाहती हैं। पश्चिमी देशों के क्रीम साबुनों से बाज़ार पटे पड़े हैं। हर लड़की उनके द्वारा सुन्दर बनकर मॉडल या अभिनेत्री बनना चाहती है। यहां सवाल भारतीय संस्कृति बनाम पश्चिमी संस्कृति का नहीं है। सवाल है औरत की अपनी स्वतंत्र पहचान का। उसे इस्तेमाल की चीज़ बनने से रोकने का। अफसोस यह है कि संचार माध्यमों में आज लड़कियों तथा औरतों की संख्या ज़्यादा है, लेकिन फिर भी उनकी पूंजीवादी पितृसत्तात्मक सोच पुरुषों से अलग नहीं। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि अभी वे फ़ैसले लेने वाले पदों तक कम ही पहुंची हैं।

आशा की किरण

इस माहौल में आशा की किरण यही है कि इन सशक्त माध्यमों का इस्तेमाल हम भी कर सकते हैं। नारीवादी पत्रिकाएं निकल रही हैं। फ़िल्मकार, औरतों के नज़रिए से फिल्में बना रहे हैं। गीतों, पोस्टरों, नाटकों, प्रकाशनों के ज़रिए अपनी बात सामने रखने की कोशिश हो रही है, परन्तु ये सभी कोशिशें अभी हाशिए पर हैं। इनकी पहुंच या तो महिला संगठनों तक है या विदेशी मंचों से मिलने वाले इनामों तक, लेकिन उससे तो आम भारतीय का मानस नहीं बदल सकता है। हमें चाहिए कि इनकी पहुंच घर-घर तक हो। छोटे-छोटे बच्चों और किशोरों तक हो।

- ज़रूरी है कि मुख्यधारा के संचार माध्यमों के ऊंचे परकोटों में सेंध लगाएं।
- औरतें उन मुकामों तक पहुंचें जहां से वे कुछ सकारात्मक करने की ताक़त और इच्छा रखें।
- स्कूलों के बच्चे-बच्चियों तक सही सोच पहुंचाने के लिए उनकी किताबें बदली जाएं।
- आज टेलीविजन का दायरा बहुत बढ़ गया है। यह झुग्गी झोपड़ी से लेकर महलों तक छा गया है। इसके पीछे एक बड़ा पूंजीवादी बाज़ार है। यदि इसके भीतर घुसना कठिन हो तो बाहर से विरोध किया जाए।
- हर मंच से उपभोक्तावाद की बाढ़ को बांधने की कोशिश की जाए।
- और सौ बात की एक बात—शिक्षा और जागरूकता। सही मायनों में मर्दों तथा औरतों को शिक्षित व जागरूक करने की कोशिश हो। □

आज़ादी की लड़ाई में महिलाओं का योगदान

मधु और भारत डोगरा

देश की आज़ादी की लड़ाई में महिलाओं ने प्रेरणादायक भूमिका निभाई। हम कभी उन्हें 1857 की लड़ाई के मैदानों में वीरांगनाओं के रूप में, कभी भारत छोड़ो आंदोलन में सत्याग्रहियों के रूप में लाठी झेलते हुए, कभी आजाद हिंद फौज की झांसी की रानी रेज़ीमेंट में बर्मा के जंगलों में युद्ध की तैयारी करते हुए, तो कभी बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन में साहसी हमले करते हुए देखते हैं। सत्याग्रह में विदेशी कपड़े के बहिष्कार और शराब की दुकानों के विरोध में उनका विशेष महत्व था। इन धरनों में उन्होंने बहुत ही हिम्मत से योगदान दिया। बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन में युवतियों की विशेष भूमिका देखी गई। यहां हम कुछ महिला स्वतंत्रता सेनानियों के साहस व बलिदान की एक झलक प्रस्तुत कर रहे हैं।

रानी चेनम्मा

कर्नाटक की एक छोटी-सी रियासत कित्तूर की रानी चेनम्मा ने उनका राज्य हथियाने की ब्रिटिश कोशिशों के खिलाफ़ वर्ष 1824-25 में बहुत बहादुरी से युद्ध किया। 23 अक्तूबर को अंग्रेज़ सेना ने कित्तूर के किले को घेरा तो रानी चेनम्मा की सेना ने अचानक बहुत ज़ोरदार हमला कर अंग्रेज़ सेना को बुरी तरह हरा दिया। इससे पहले रानी की हिरासत में जो ब्रिटिश महिलाएं व बच्चे आ गए थे उन्हें जरा भी नुकसान नहीं पहुंचाया गया और बहुत आराम से रखा गया। युद्ध के समय रानी घोड़े पर सवार होकर स्वयं मौजूद रहीं।

दिसंबर के आरंभ में कहीं अधिक भारी-भरकम

अंग्रेज़ी सेना ने फिर कित्तूर पर हमला किया और इस बार बहुत बहादुरी से लड़ने के बाद भी रानी चेनम्मा की पराजय हुई। उन्हें गिरफ़्तार कर एक किले में रखा गया जहां लगभग 5 वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो गई।

झांसी की रानी

झांसी की रानी और अंग्रेज़ों का झांसी में मार्च 1858 में 17 दिनों का घमासान युद्ध हुआ। लक्ष्मीबाई ने स्वयं युद्ध में शानदार हिस्सा लिया और बहुत बहादुरी से अपने किले की रक्षा की। अन्य स्त्रियों की भूमिका भी बहुत बहादुरी की रही। उन्होंने तोपें चलाने और बारूद भरने का काम भी किया।

जब किले को बचाना संभव नहीं रहा तो रानी ने बहुत कुशलता और वीरता से किले से निकलकर कालपी की ओर प्रस्थान किया। रानी का पीछा कर रहे बेकर को रानी व उनके साथियों ने खदेड़ दिया। कालपी में रानी ने 'लाल कुर्ती' की बहादुर सेना संगठित की। बांदा के नवाब और तांत्या टोपे का सहयोग भी मिला, पर जल्द ही अंग्रेज़ों की कहीं अधिक शक्तिशाली सेना ने उन पर हमला किया। अब रानी और उनके सहयोगियों ने ग्वालियर की ओर कूच किया। ग्वालियर में वहां की फौज का बड़ा हिस्सा झांसी की रानी से आ मिला। शीघ्र ही ग्वालियर पर भी अंग्रेज़ों ने भारी-भरकम हमला किया। आख़िरी समय तक अपनी वीरता से अंग्रेज़ों को अचंभित करते हुए रानी ने शहादत प्राप्त की। आज तक भारतवासी याद करते हैं– 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।'

झलकारी

झांसी की रानी की जिन सखियों ने झांसी के युद्ध में अपनी शौर्य की कहानी लिखी उनमें झलकारी का विशेष स्थान है। जब रानी को किले से निकालना था तो झलकारी स्वयं रानी की वेशभूषा में किले से बाहर आ गई। उसे लक्ष्मीबाई समझकर अंग्रेज फौज उसकी ओर झपटी जिससे वास्तविक लक्ष्मीबाई को बाहर निकलने का अवसर मिल गया। वह बहादुरी से लड़ते हुए अंग्रेज़ों की गिरफ़्तारी में आ गई, पर रात को इस गिरफ़्तारी से भाग निकली। अगले दिन अंग्रेज़ यह देखकर हैरान रह गए कि वह अपने तोपची पति पूरनसिंह के पास खड़े होकर उसकी सहायता कर रही थी। जब पूरनसिंह मारे गए तो झलकारी ने स्वयं तोप का संचालन तब तक किया जब तक उसने स्वयं वीरगति प्राप्त नहीं की।

बेगम हज़रत महल

अवध में अंग्रेज़ों के खिलाफ़ 1857 में विद्रोह

हुआ तो बेगम हज़रत महल ने नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। बेगम सरफ़राज़ महल ने उनके बारे में लिखा, 'हज़रत महल खुद हाथी पर बैठकर आगे-आगे अंग्रेजों से मुकाबला करती है। आंख का पानी ढल गया है, उनको डर बिल्कुल नहीं लगता।'

बेगम हज़रत महल ने महिलाओं को भी सेना में संगठित किया। बाद में जब अंग्रेज अवध में घुसे तो एक महिला पेड़ पर चढ़कर उन पर गोलियां दागती रही।

मार्च 1858 में अंग्रेज़ों की जीत के बाद भी हज़रत महल ने घुटने नही टेके। अपने बेटे विरजीस को लेकर वे नेपाल चली गई। जहां 1879 में उनका देहांत हुआ।

कनकलता बरुआ

असम के जिला दरंग की 16 वर्षीय इस छात्रा ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में गोहपुर पुलिस स्टेशन की ओर बढ़ रहे एक जुलूस का नेतृत्व किया। पुलिस स्टेशन पर तिरंगा लहराते हुए पुलिस की गोली से 20 सितंबर 1942 को इस वीरांगना ने शहादत प्राप्त की।

वनलता दासगुप्ता

बंगाल की वनलता दासगुप्ता ने बहुत कच्ची उम्र में ही क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लिया। बहुत समय जेल में बिताने के बाद केवल 21 वर्ष की अल्पायु में 1 जुलाई 1936 को इनका देहांत हो गया।

प्रीतिलता वडेदर

बंगाल की इस दिलेर छात्रा ने सूर्यसेन के नेतृत्व में अनेक क्रांतिकारी गतिविधियों में हिस्सा लिया। चटगांव जिले में पुलिस से घिरने के बाद भी बहुत मुस्तैदी से वे बच निकलने में सफल रहीं। इसी जिले में एक योरोपियन क्लब पर असफल हमला किया व पुलिस के हाथ में पड़ने के स्थान पर ज़हर खा लिया।

मातागनी हाज़रा

मातागनी हाज़रा ने सविनय अवज्ञा आंदोलन, नमक सत्याग्रह, चौकीदार टैक्स के विरोध व भारत छोड़ो आंदोलन में आगे बढ़कर हिस्सा लिया और जेलयात्रा की। 29 सितंबर, 1942 को टसलुक सिविल कोर्ट की ओर बढ़ रहे जुलूस का नेतृत्व किया और वहां तिरंगे को लहराते समय पुलिस की गोली का शिकार हुई। एक वृद्ध महिला के इस साहस पर लोग नतमस्तक थे।

कुमलीनाथ

20 सितंबर, 1942 को असम के दरंग जिले में टेकियाजुली पुलिस स्टेशन की ओर जा रहे जुलूस में 64 वर्षीय कुमली नाथ भी शामिल थीं। तिरंगा हाथ में लिए हुए बेटे को पुलिस ने अपनी गोली का निशाना बनाया। मां ने छलांग मारकर यही गोली अपने सीने पर ले ली और सैकड़ों नतमस्तक लोगों के आगे वहीं शहादत प्राप्त की। □

विकास कार्यक्रम और स्थानीय सामाजिक कार्यकर्त्ता

सुहास कुमार

आज सामाजिक क्षेत्र में काम कर रहे सभी संगठनों को सामाजिक कार्य और सेवा का मतलब ज़्यादा साफ़ हो गया है। वे समझ गए हैं कि अगर सचमुच पिछड़े लोगों को आगे बढ़ाना है तो हर जगह उन्हें साथ लेकर चलना होगा। कोई भी विकास या सहायता कार्यक्रम बनाए जाएं तो उनके नज़रिए को ध्यान में रखना होगा, तभी वे सफल हो सकेंगे। यह तभी हो पाएगा जब उनकी बात भी सुनी जाए। आम जन जिनमें 50 फीसदी महिलाएं है अपनी बात ठीक से कह सकें, उनकी बात का असर हो, इसके लिए उनकी ताक़त, उनका अपने पर भरोसा बढ़ाना होगा।

आज देश के कोने कोने में कई सामाजिक व महिला संगठन काम कर रहे हैं। कई सरकारी व ग़ैर सरकारी योजनाओं को लागू करने का काम वे ही कर रहे हैं। ऐसे में स्थानीय या क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं का काम बड़े महत्व का हो जाता है। वे कागज़ के लिखे को काम में बदलते हैं। वे कार्यकर्त्ता लोगों के विकास से जुड़े कार्यक्रमों की एक बुनियादी कड़ी हैं। उनके कंधों पर एक बड़ी ज़िम्मेदारी है।

महिलाओं के साथ स्थानीय कार्यकर्त्ताओं का महिला होना ज़रूरी है, लेकिन उनका केवल महिला होना ही ज़रूरी नहीं है। उनकी एक खास सोच व खुला नज़रिया होना भी ज़रूरी है। आगे तभी बढ़ा जा

साभार–श्रमिक भारती 1986-97

सकता है जब पीछे की गलत बातों को सुधारा जाए। पीछे की गलत बातों को समझा जाए, गलत रीति रिवाज़ों, तौर तरीकों को बदला जाए।

कार्यकर्त्ताओं का संवेदनशील होना भी जरूरी है। दूसरों की बातों को समझदारी से सुनना समझना होगा तभी तो कुछ हल निकल पाएंगे। बहुत सी तकलीफ़ों व दर्दों को बिना उनसे गुज़रे भी महसूस करना होगा। यह भी समझना होगा कि कहां तक समस्याएं अलग अलग हैं, कहां वे पूरे सामाजिक ढांचे से जुड़ जाती हैं।

हमारी बस्ती में काम कर रही एक कार्यकर्त्ता से बातचीत हुई। उसने बताया "कार्यकर्त्ता को वहां बोली जाने वाली भाषा और बोली को अच्छी तरह समझना चाहिए। उसमें "मैं" की भावना नहीं होनी चाहिए। जिनके साथ काम कर रही

हो अपने को उन्हीं में से एक समझना चाहिए। उसे बात धीरज और तसल्ली से सुनना आना चाहिए। उसके चेहरे पर मुस्कराहट होनी चाहिए, दुख की बात सुनकर अफ़सोस का भाव होना चाहिए। उसे लोगों की बात का जवाब शांति और नम्र भाव से देना चाहिए। उसे ज़्यादा से

साभार–श्रमिक भारती 1986-97

ज़्यादा जानकारी पाने की हमेशा कोशिश करते रहना चाहिए। कार्यकर्त्ता को सबसे मेलजोल करना आना चाहिए। जिन लोगों के बीच काम कर रही हो उनसे एक हेलमेल रिश्ता बनाना ज़रूरी होता है।"

–जीतेन्दर कौर (अंकुर संस्था)

रिश्ता बनाने का गुण

यह आसान नहीं है, और न ही सब यह आसानी से बना पाते हैं। हमारा समाज, हमारा धर्म महिलाओं को चुप रहना सिखाता है। उन्हें सिखाया जाता है हर हाल में चुप रहना और समझौता करना। इस सोच से उन्हें बाहर निकालना आसान काम नहीं है। इसके लिए कुछ अपने अंदर झांकना होगा। अपनी बात खुलकर कहनी होगी। अपनी मुश्किलों, समस्याओं को भी बताना पड़ सकता है। कार्यकर्त्ता खुद खुलकर बात करेंगे तभी महिलाएं खुलेंगीं।

सोचने समझने की एक बात यह भी है कि एक ही समूह में अलग अलग जाति, धर्म, गरीब, ज़्यादा गरीब महिलाएं हो सकती हैं। एक कार्यशाला के दौरान यह बात सामने आई। "हमें नहीं मालूम था कि पाली में इतनी तरह की औरतें रहती हैं। वहां हरिजन महिलाएं, पिछड़ी जाति की महिलाएं, सवर्ण महिलाएं, अमीर व गरीब महिलाएं रहती हैं, यह तो हमें पता था, लेकिन हमें यह नहीं पता था कि वहां सासें, बहुएं, जिठानी, ननद, भाभी, चाची, मां-बेटियां हैं जिनसे एक बार एक साथ बात करने में मुश्किलें आती हैं यही नहीं वहां विधवा, शादीशुदा, कुंवारी, "अच्छी" और "बुरी", बांझ, बच्चे वालियां, केवल लड़कियों की माताएं, घरेलू और घर पर बोझ होने वाली महिलाएं भी इस सूची में शामिल हैं।"

–सखी केन्द्र, कानपुर–एक रपट

स्थानीय कार्यकर्त्ताओं का काम महिला समूह और संगठन बनाना भी है, कैसे उन्हें आपस में जोड़ा जाए और खुद से जोड़ा जाए, यह एक समझ-बूझ कर करने वाला काम है। संगठन बनाने के लिए समूह की संरचना को पूरी तरह समझना होगा, ऊपर दी हुई तमाम महिलाओं की सूची को ध्यान में रखना होगा।

कार्यकर्त्ताओं को खुद हल निकालने के बजाए ऐसे बात करनी चाहिए कि महिलाएं खुद हल सुझाने में मदद करें।

सामाजिक कार्यकर्त्ता का काम काफी मेहनत और मुश्किल वाला है। इसके लिए हिम्मत भी चाहिए।

इस काम में रुचि हो व सामाजिक कल्याण के काम की इच्छा हो तभी यह काम करना चाहिए। उसे केवल पैसा कमाने के लिए नौकरी भर नहीं समझना चाहिए। सच्ची लगन व जोश हो तो कोई भी काम मुश्किल नहीं है।

आज देश के कोने कोने में कई सामाजिक व महिला संगठन काम कर रहे हैं। कई सरकारी व गैर सरकारी योजनाओं को लागू करने का काम वे ही कर रहे हैं। ऐसे में स्थानीय या क्षेत्रीय कार्यकर्त्ताओं का काम बड़े महत्व का हो जाता है। वे कागज़ के लिखे को काम में बदलते हैं। वे कार्यकर्त्ता लोगों के विकास से जुड़े कार्यक्रमों की एक बुनियादी कड़ी हैं। उनके कंधों पर एक बड़ी ज़िम्मेदारी है।

कार्यकर्त्ता को यह नहीं सोचना चाहिए कि वे लोगों को कुछ सिखाने भर आई हैं। हरेक के पास अनुभव व ज्ञान होता है। यह सीखने सिखाने दोनों का काम है। अपनी बातें उन पर थोपी जाने जैसी नहीं होनी चाहिए। कोशिश यह होनी चाहिए कि खुद महिलाओं का ज्ञान, अनुभव, नज़रिया उनकी ताक़त बने, कमज़ोरी नहीं।

कुछ और ध्यान में रखने वाले बिंदुः

- खुद से शुरू करें फिर परिवार और समाज की तरफ़ बढ़ें।
- ठोस अनुभवों से शुरू करें, उन पर सोचें, निचोड़ निकालें। फिर हल निकालने की ओर बढ़ें।
- शुरू में एक ही मुद्दा लें, वह भी आसान मुद्दा लें। धीरे धीरे और मुद्दे जोड़ें। कठिन मुद्दे बाद में उठाना अच्छा है। शुरू में जाना पहचाना, साफ़ दिखने वाला मुद्दा लें। सामने न दिखने वाले मुद्दे बाद में उठाएं।
- महिलाओं को बात इस तरह बताई जाए कि वे अपनी कठिनाइयों और समस्याओं के कारण खुद ढूंढे। वे समझ सकें कि उनका दमन और शोषण कहां और कैसे हो रहा है।
- महिलाएं एक दूसरे से जुड़ेंगी तो ताक़त आएगी और अपनी बात ज़्यादा निडर होकर कह पाएंगी। उन्हें आपस में जोड़ने की कोशिश बराबर चलती रहनी चाहिए।
- महिलाओं की कही बातों के साथ दो अनकही बातों को भी ढूंढना होगा।

इतनी लंबी सूची देने का यह मतलब नहीं है कि हर कार्यकर्त्ता में सभी गुण होना जरूरी है। कुछ में कई गुण स्वभाव से ही मौज़ूद हो सकते हैं तो कुछ जल्दी सीख लेते हैं। कुछ को ज़्यादा समय लग सकता है। अपने को लगातार विकसित करने, आगे बढ़ने की कोशिश ज़ारी रहे तो काम में ज़रूर सफलता मिलेगी।

पूरे समय महिलाओं को तो साथ लेकर चलना ही होगा। पूरी बस्ती को साथ लेना होगा। जब तक पुरुष संवेदनशील नहीं होंगे और महिलाओं की मुश्किलों को नहीं समझेंगे—समाज में कोई भी बदलाव नहीं आ पाएगा और सारे विकास कार्यक्रम का आखिरी मुकाम तो रहन-सहन व जीवन को बेहतर बनाना ही है। □

बेटियां

हरीश अरोड़ा

प्यार का मीठा एहसास हैं बेटियां,
घर के आंगन का विश्वास हैं बेटियां।

वक्त भी थामकर जिनका आंचल चले,
ढलते जीवन की हर सांस हैं बेटियां।

जिनकी झोली है खाली उन्हें है पता,
पतझरों में भी मधुमास हैं बेटियां।

गोद खेली, वो नाज़ों पली, फिर चली,
राम-सीता का वनवास हैं बेटियां।

जब विदा हो गई, हर नज़र कह गई
ज़िन्दगी भर की इक आस हैं बेटियां।

घास और औरत

प्रीता व्यास

घास!
एक सी है
मेरी-तुम्हारी नियति
दूसरों की दया पर निर्भर
वे चाहें
तो बढ़ने दें
न चाहें
तो उखाड़ फेंकें।

घास!
एक सा है
मेरा-तुम्हारा अस्तित्व
उगना-बढ़ना
और फिर चुपचाप किसी दिन
पैरों तले रौंद दिए जाना।

घास!
एक सा है
मेरा-तुम्हारा स्वभाव
मरते-मरते भी जी उठना।

गौतमी, सावित्री फुले और

महाप्रजापती गौतमी

जुही

आज तक हम गौतम बुद्ध की ही बात करते आए हैं। बौद्ध धर्म की स्थापना और उसे प्रचलित करने का श्रेय उन्हीं को जाता है। बौद्ध धर्म में शुरु में औरतों को जाने की इज़ाज़त नहीं थी। मठों में औरतों की भागीदारी और बौद्ध धर्म ग्रहण करने की इज़ाज़त पाने के लिए 2500 साल पहले औरतों को काफी संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्ष की शुरुआत और इसका संचालन किया महाप्रजापती गौतमी ने। आइए आज उनके बारे में जानें और बात करें।

गौतम बुद्ध का बचपन का नाम राजकुमार सिद्धार्थ था। अपने पिता राजा शुद्धोधन की एकमात्र संतान। पैदा होने के एक हफ्ते बाद ही सिद्धार्थ की माता का देहान्त हो गया। तब राजा शुद्धोधन ने दूसरी शादी की, प्रजापति गौतमी से। गौतमी ने बालपन से ही सिद्धार्थ की देखभाल सगी मां की तरह की। सिद्धार्थ को वह अपने बेटे नंद से भी ज़्यादा प्यार करती थी और सिद्धार्थ ने भी कभी उन्हें अपनी सौतेली मां नहीं समझा।

राजा शुद्धोधन की मौत के बाद गौतमी ने बौद्ध धर्म की विधिवत पढ़ाई की। धर्म की अच्छाई/बुराई समझने और उस पर अमल करने की कोशिश की। तब तक उन्हें यह एहसास नहीं था कि बौद्ध धर्म भी औरतों को मर्दों के बराबर का दर्जा नहीं देता। इसी भ्रम में उन्होंने गौतम बुद्ध के लिए एक चोगा तैयार किया। यह चोगा वह गौतम बुद्ध को पांचवे "वासन" की समाप्ति पर भेंट करना चाहती थीं, पर वैशाली के महोत्सव पर जब गौतम बुद्ध ने वह चोगा लेने से इंकार कर दिया तब गौतमी भौचक्की रह गई। बार-बार आग्रह करने पर गौतम बुद्ध ने बताया कि औरत का बनाया चोगा वह ग्रहण नहीं कर सकते। चाहे फिर वह औरत उनकी मां ही क्यों न हो। गौतमी बेहद दुखी हुई। इसलिए नहीं कि उनके बेटे ने उनकी भेंट स्वीकार नहीं की बल्कि इसलिए कि औरत और मर्द के दर्जे में फ़र्क की उम्मीद बुद्ध से नहीं की थी पर फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी और फ़ैसला किया कि चोगा बुद्ध को देकर ही रहेगी चाहे उसके लिए उन्हें जो भी प्रयत्न करने पड़ें।

आखिरकार गौतमी विजय हुई। बुद्ध ने चोगा स्वीकार किया पर केवल अपने लिए नहीं। उन्होंने

अज़ीज़न–तीन जुझारू औरतें

कहा कि चोगा महासंघ को भेंट किया जाए। महासंघ में चारों दिशाओं से भिक्षु आते थे। ऐसे इस चोगे को काफ़ी लोग इस्तेमाल कर पाएंगे। यह गौतमी की एक बहुत छोटी सी जीत ही सही, पर जीत तो थी।

भिक्षुणी संघ

प्रजापति गौतमी की महत्वाकांक्षा यहीं आकर खत्म नहीं हुई। धीरे-धीरे उन्हें बौद्ध धर्म की तमाम सच्चाई का एहसास हुआ। उन्हें लगा जीवन का सही अर्थ सेवा में ही है। तब उन्होंने अपना जीवन संघ की सेवा में लगाने का संकल्प किया।

तब तक औरतों के लिए किसी भिक्षुणी संघ की स्थापना नहीं हुई थी। बौद्ध धर्म के अनुयायी मानते थे कि संघ में औरतों के आने से मर्दों का नैतिक पतन हो जाएगा। वह पूरी तरह से धर्म की सेवा नहीं कर पाएंगे। शुरूआत में तो गौतमी ने बुद्ध की मिन्नतें कीं कि औरतों को संघ की सेवा का मौका दिया जाए पर बुद्ध ने साफ़ इंकार कर दिया। तब गौतमी ने प्रतिरोध किया। अपने सर के बाल मुडंवा दिए। पीला चोगा धारण किया और कुछ औरतों को साथ लेकर कपिलवस्तु से वैशाली तक पदयात्रा की। बुद्ध उस समय महावन में रहते थे। महावन के द्वार पर खड़े होकर दिन-रात घोर तपस्या की। तब भी बुद्ध नहीं पिघले। तब उन्होंने ज़ोर से बुद्ध और संघ के दूसरे भिक्षुओं को फटकारा। कहा कि तुम लोग भगवान को पाने निकले हो पर भगवान तुम्हें नहीं मिलेंगे। तुम संसार और भगवान की रचनाओं का मोह नहीं छोड़ पाए, डरपोक हो। अपने स्वार्थ के लिए औरत को पतन का द्वार कह रहे हो। यह तुम्हारी हार है। इस फटकार का सभी पर बहुत असर हुआ। शर्मिंदा होकर बुद्ध और उनके साथी आनंद ने माफ़ी मांगी और तब भिक्षुणी संघ की स्थापना हुई।

जैसे-जैसे वक्त बीतता गया संघ बड़ा होता गया। काफ़ी औरतें इसमें शामिल हुईं। इनमें से कुछ ने काफ़ी साहित्य, गीत, कथाओं की रचना की। खेमा व उपल्वन इस संघ की दो प्रमुख रचनाकार थीं।

इस भिक्षुणी संघ की स्थापना से औरतों को काफ़ी फ़ायदा हुआ। बुद्ध से पहले औरतों को केवल किसी की मां, पत्नी, बेटी, बहन के रूप में देखा जाता था, पर अब उनकी अपनी एक अलग

पहचान थी। इस संघ में ऊंच-नीच के भेदभाव की कोई जगह नहीं थी। यहां राजकुमारी, दासी, विधवा, शादीशुदा औरतें, एक जगह रहती थीं। एक साथ पूजा करती थीं, एक साथ खाना खाती थीं। यहां पर ऊंच-नीच धर्म में उन्नति के मापदण्ड से नापी जाती थी। दौलत से नहीं। संघ में ही रहते रहते कुछ भिक्षुणियों ने "थेरी गाथा" की रचना की। थेरी गाथा यानि बौद्ध भिक्षुणियों के गीत। इन गीतों में यह भिक्षुणियां अपने जीवन के सुख-दुख, खुशी, रोष, गम, संघर्ष आदि के किस्से बयान करती थी। भिक्षुणी संघ की स्थापना से औरतों के दर्ज़े में सुधार हुआ। लोगों को औरतों के महत्व का एहसास हुआ। उन्हें सम्मान और उनका सही स्थान मिला और इस तरह 2500 साल पहले समाज में औरत को उसका सही दर्जा दिलाने का श्रेय प्रजापति गौतमी को जाता है। अगर गौतमी संघर्ष नहीं करती तो आज भी मठों, संघों और बौद्ध धर्म के इतिहास में औरतों का नामोनिशान नहीं होता और वह सदैव मर्दों की छत्र-छाया में ही जीती रहती। गौतमी के प्रयास से औरतों को सदियों पहले खुले वातावरण में जीने का मौका मिला। आज़ादी मिली और अपने मन की करने का हक़ मिला। आज प्रजापति गौतमी जीवित नहीं है। शायद बहुत लोग उनके बारे में जानते भी नहीं है। इस छोटे से लेख के ज़रिए हम उन तमाम औरतों को याद करके, श्रद्धा अर्पित करना चाहते हैं जिनको इतिहास में उनका यथास्थान नहीं मिला है। □

आओ बहनें एक हो जाएं
धर्म, जाति का भेद मिटाएं।
मिलकर महिला दिवस मनाएं
अधिकारों की आवाज उठाएं।

सावित्री बाई फुले

(3 जनवरी 1831 - 10 मार्च 1897)

सामाजिक न्याय और नारी शिक्षा के लिए जुझारू महिला

ज्ञान की एक ज्योति मुझमें जल उठी रोशनी में जिसकी जगमगा उठा जहां

देश अब भी ब्रिटिश शासन के अधीन था। जन शिक्षा में लोगों ने दिलचस्पी लेनी शुरू ही की थी। नारी शिक्षा की बात पर भवें अब भी तन जाती थीं। ऐसी ही स्थिति में सावित्री बाई फुले ने काफ़ी कम उम्र में अनौपचारिक रूप से शिक्षा प्राप्त की। वे प्रख्यात समाज महात्मा ज्योतिराव फुले की पत्नी थीं। उन्होंने ही नारी शिक्षा के इस महान कार्य की नींव डाली थी। उन्हें इसके लिए समाज के शक्तिशाली लोगों के तिरस्कार व आलोचनाओं का शिकार होना पड़ा। उन्होंने सारी कड़वाहट को स्वीकार कर लिया, लेकिन अपने रास्ते पर से डिगना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सावित्री बाई को सिर्फ़ पढ़ना-लिखना ही नहीं सिखाया बल्कि उन्हें भी नारी शिक्षा के प्रति समर्पण की भावना से भर दिया। सावित्री बाई स्वयं भी एक बुद्धिमती व संवेदनशील महिला थीं, उन्हें नारी शिक्षा के महत्व व ज़रूरत को समझते देर न लगी। नारी शिक्षा उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। वे पहली भारतीय महिला थीं जिसने श्रीमती मिशेल के "नार्मल स्कूल" में अध्यापन का प्रशिक्षण प्राप्त किया।

सावित्री बाई फुले व महात्मा फुले ने मिल जुलकर महाराष्ट्र में पहले बालिका विद्यालय की स्थापना की। उस समय लड़कियों को शिक्षित करने की बात कोई सोचता भी नहीं था। लिहाज़ा समाज में नारी शिक्षा का प्रचार-प्रसार काफ़ी मुश्किल था। वे व्यक्तिगत तौर पर यह मानते थे कि लड़कियों को शिक्षित करने से सिर्फ़ उनका ही भला नहीं होगा बल्कि आने वाली पीढ़ी को भी इससे फ़ायदा होगा। इस प्रकार पूरे समाज का स्तर बढ़ जाएगा। वे समझते थे कि यह काफ़ी मुश्किल काम है फिर भी करना ज़रूरी है। यही प्रेरणा समाज सुधार के उनके तमाम प्रयासों का

मूलाधार थी। दोनों ने मिलकर लोगों को समझाने-बुझाने के लिए तरह-तरह के तरीके अपनाए। उन्होंने शिक्षा के प्रति लोगों में दिलचस्पी जगाने के लिए तरह-तरह की योजनाएं शुरू कीं। मार्के की बात यह है कि 150 साल पहले जिन योजनाओं की उन्होंने कल्पना की और लागू किया वे आज भी प्रासंगिक हैं।

उनके द्वारा स्थापित बालिका विद्यालय धीरे-धीरे लोकप्रिय होने लगा। उनकी मेहनत रंग लाने लगी। सावित्री बाई की छात्राएं खास तौर पर समर्पित व बुद्धिमती मानी जाती थीं। तत्कालीन शिक्षा निरीक्षक कैप्टन जे.एफ. लेक्टर ने भी 26 दिसंबर, 1856 की रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार किया था। ज्योतिबा और सावित्री बाई दोनों का ही यह मानना था कि शिक्षा का अर्थ है ज्ञान व जानकारी। इसलिए समाज के हर तबके में शिक्षा का प्रचार-प्रसार जरूरी है। सन् 1852 में उन्होंने अछूतों के लिए स्कूल की स्थापना की। इससे इन उत्पीड़ित जातियों की लड़कियों के लिए भी स्कूल में दाखिला लेना संभव हो गया।

सावित्री बाई का कार्य क्षेत्र सिर्फ़ शिक्षा तक ही सीमित नहीं था बल्कि उन्होंने औरतों को पुरुष प्रधान समाज की सांस्कृतिक जकड़न से भी मुक्ति दिलाने के प्रयास किए। बाद के दिनों में यह उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य बन गया। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया। उन्होंने उन ब्राह्मण विधवाओं के लिए एक आश्रम की स्थापना की जिन्हें या तो मरने के लिए बाध्य कर दिया जाता था या फिर मार डाला जाता था। महाराष्ट्र में इस प्रथा को रोकने में उन्होंने प्रमुख भूमिका निभाई। उन्होंने अदालती शादी के विचार का भी समर्थन किया जिससे लोग बिना ब्राह्मण की मदद के भी शादी कर सकें। उन्होंने एक विधवा के बेटे यशवंत को गोद लिया। सावित्री बाई एक साहसी व आजाद ख्यालों वाली औरत थीं। उन्होंने कभी अपने विचारों पर कोई समझौता नहीं किया। वे पहली महिला थीं जो अपने पति की अंत्येष्टि के समय "टिटवी" ले गई। पारंपरिक हिन्दू रिवाजों के मुताबिक ऐसा करने का अधिकार सिर्फ पुरुषों को है। उनका पूरा जीवन चुनौतियों से भरा था। वे किसी भी चीज़ से भय नहीं खाती थीं। उनमें हर प्रकार की स्थिति को झेल लेने की अद्भुत क्षमता थी।

उनका पूरा जीवन समाज में औरतों की स्थिति में बेहतरी के उद्देश्य के प्रति समर्पित था। महात्मा ज्योतिराव फुले ने हमेशा उनके प्रयासों का समर्थन किया। यही वजह थी कि उनका दांपत्य जीवन इतना सुखद था। उन्होंने हमेशा एक-दूसरे के कामों में मदद की। महात्मा फुले की मृत्यु के बाद भी सावित्री बाई के कदम रुके नहीं। सावित्री बाई फुले ने अपनी प्रतिभा व कार्यों के ज़रिए महिलाओं के दिलों में नारी शिक्षा की ज्योति जलाए रखी। □

अज़ीज़न

बात लखनऊ शहर की है। एक दिन कुछ सहेलियां गोमती नदी के किनारे गई। उस समय नदी उफन रही थी। लड़कियों ने देखा कि एक बच्चा नदी में डूब रहा था। एक बालिका से यह देखा नहीं गया। उसने झट नदी में छलांग लगा दी। उसने बच्चे को पीठ पर रखकर बाहर निकाल लिया। जान की बाज़ी लगाने वाली यह बालिका अज़ीज़न थी। आगे चलकर अजीजन ने अंग्रेज़ों के दांत खट्टे कर दिए थे।

देश की आज़ादी की लड़ाई में अज़ीज़न ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिए थे। उन पर जासूसी करने का मुकदमा चलाकर अंग्रेजों ने फांसी की सजा दी। अज़ीज़न बाई जैसी साहसी और वीर महिलाओं के बल पर ही हमें आज़ादी मिली है। उन्हें हमारा सलाम।

अज़ीज़न का जन्म एक गायक परिवार हुसैन खां के यहां हुआ था। माता हमीदा बेगम अज़ीज़न को जन्म देकर इस संसार से विदा हो गई। पिता हुसैन खां ने अज़ीज़न को पाला। अज़ीज़न पिता से गाना सीखती। साथ में वह नाच का भी अभ्यास करती थी। अपने पिता के साथ वह महफ़िलों में जाने लगी। उसकी शौहरत लखनऊ से बाहर भी फैलने लगी। पिता की मौत के बाद वह कानपुर चली आई। नाच गाने में उसे काफ़ी रुपये मिल जाते थे, पर अज़ीज़न को यह काम पसंद नहीं था।

अज़ीज़न के एक दोस्त रामरतन थे। रामरतन बड़े देशभक्त थे। रामरतन ने अज़ीज़न को नाच-गाने का काम छोड़ने की राय दी। रामरतन के कहने पर अज़ीज़न ने यह काम छोड़ दिया। वह अपना ध्यान पढ़ने-लिखने में लगाने लगी। वह रामरतन से अंग्रेज़ों के ज़ुल्म के बारे में सुनती थी। यह सब सुनकर अज़ीज़न का खून खौल उठता। वह अंग्रेज़ों को उनके ज़ुल्म का सबक सिखाना चाहती थी। वह आज़ादी की लड़ाई में कूद पड़ी।

उन दिनों वीर तांत्या टोपे देश के कोने-कोने में घूमकर आज़ादी का अलख लगा रहे थे। जब वे कानपुर आए तो उनकी मुलाक़ात अज़ीज़न से हुई। अज़ीज़न के देशप्रेम का हौसला देखकर तांत्या टोपे बहुत प्रसन्न हुए। अज़ीज़न उसके बाद तांत्या टोपे के शिविर में रहने लगी। उसने घुड़सवारी और तलवार चलाने की कला सीख ली। उसकी चतुराई देखकर तांत्याजी ने उसे जासूस बना लिया। वह अंग्रेज़ों की योजना का पता लगाती और सारी खबरें तांत्याजी को देती थी।

एक सच्ची देशभक्त

एक बार की बात है। तांत्याजी और अज़ीज़न ने अपने सैनिकों को अंग्रेज़ों की छावनी पर हमले का आदेश दे दिया। अचानक हमले से अंग्रेज़ी फ़ौज के बीच तहलका मच गया। अंग्रेज़ी फ़ौज में हिंदुस्तानी सिपाही अंग्रेज़ सिपाहियों को मारने लगे। अनेक सिपाही मौत के घाट उतार दिए गए। जगह-जगह छावनी में आग लगा दी गई। उस समय अंग्रेज़ों के सेनापति ने 2500 सैनिकों को कानपुर के किले में भेज दिया। करीब एक हजार अंग्रेज़ महिलाओं और बच्चों को किले में भेज दिया गया।

इधर तांत्याजी ने कानपुर के किले पर हमला करने की ज़िम्मेदारी अज़ीज़न का दे दी। नाना

साहेब को भी फौज के साथ भेजा गया। तांत्याजी ने खुद क़िले के बाहर सैनिकों के साथ मोर्चा संभाल लिया। अज़ीज़न ने पुरुष लिबास में सैनिकों के साथ किले पर धावा बोल दिया। यह लड़ाई 21 दिनों तक चलती रही। इस बीच किले में रह रहे अंग्रेज़ों को रसद की कमी पड़ गई। अंग्रेज़ों ने घबराकर इलाहाबाद सूचना भेजनी चाही। पर अज़ीज़न को यह सूचना मिल गई।

दूसरे दिन कानपुर के किले पर तीन तरफ़ से हमला किया गया। अचानक हमले से अंग्रेज़ शांत पड़ गए। उन्होंने सुलह करने की पेशकश की और अपने सारे हथियार तांत्याजी के सैनिकों को सौंप दिये। तभी जाकर किले में बंद अंग्रेज़ों को इलाहाबाद जाने के लिए छोड़ा गया। इलाहाबाद पहुंचकर अंग्रेज़ों ने सेनापति को अपनी कहानी सुनाई। अंग्रेज़ सेनापति बहुत क्रोधित हुआ। उसने भारतीयों से बदला लेने का निश्चय कर लिया। एक बड़ी सेना को कर्नल डुगाई के साथ तुरंत कानपुर भेजा गया। अंग्रेज़ सैनिकों ने कानपुर को चारों ओर से घेर लिया और शहर में घुसते ही मारकाट शुरू कर दी।

अंग्रेज़ सैनिकों का मुकाबला करने के लिए तांत्या टोपे आगे बढ़े। दोनों ओर से हमले का दौर चल रहा था। तभी अंग्रेज़ सैनिक अधिकारी फेड्रिक कूपर एक बड़ी फौज के साथ आ धमका। डुगाई और फेड्रिक ने तांत्या टोपे को घेर लिया। उधर अज़ीज़न भी सैनिकों के साथ जूझ रही थी। उसने देखा तांत्या टोपे अकेले पड़ गए हैं। अज़ीज़न तांत्याजी के पास पहुंची। उसने तांत्याजी को तत्काल वहां से भाग जाने को कहा। पर तांत्याजी नहीं माने। वे लड़ते रहे। तब अज़ीज़न छावनी में पहुंची और तांत्याजी की तरह वेशभूषा धारण की। वह तुरंत युद्ध के मैदान में आ डटी। मौका देखकर तांत्याजी भागे। उधर नाना साहेब युद्ध के मैदान में पहुंच गए। अज़ीज़न और नाना साहेब अंग्रेज़ों से मुकाबला कर रहे थे। तभी तांत्याजी फिर सैनिकों के साथ आ धमके। तीनों ओर से हमले के कारण अंग्रेज़ों के छक्के छूट गए। अंग्रेज़ सेनापति ने घबराकर नाना साहेब के सामने घुटने टेक दिए। तांत्याजी ने सभी अंग्रेज़ सैनिकों को कैद कर लिया। उन्होंने अज़ीज़न की पीठ ठोंकते हुए कहा—"आज तुमने हमारी लाज बचा ली। अगर आज तुम न होती तो हमारी हार निश्चित थी। तुम हमारे बीच शेरनी हो।" अज़ीज़न, तांत्याजी और नानाजी के कारण अंग्रेज़ों के पांव कानपुर में नहीं टिक सके।

एक साहसी महिला नपु

अज़ीज़न बड़ी साहसी महिला थी। वह रात में अंग्रेज़ों की छावनी में जाती। वहां अपने नाच गाने से सबको मोहित कर देती थी। एक दिन जब वह छावनी में गई तो उसे अंग्रेज़ सैनिकों ने कैद कर लिया। उस पर जासूसी करने का मुकदमा चला। उसे फांसी की सजा सुनाई गई।

6 मई, 1857 को अज़ीज़न को फांसी के तख्ते पर लाया गया। उसने प्रसन्न भाव से धरती मां को प्रणाम किया और फांसी का फंदा अपने गले में डाल लिया। ऐसी ही वीरांगनाओं और वीरों के बल पर आगे चलकर भारत को आज़ादी मिली। इस आज़ादी की रक्षा के लिए आज भी ऐसे ही त्याग की ज़रूरत है। □

'सुबह' से साभार

'हम चुप नहीं रहेंगे!'

सुनीता ठाकुर

बात 31 दिसंबर 1997 की है। हम लोग रांची में हुए छठे नारी मुक्ति संघर्ष सम्मेलन से लौट रहे थे। टाटा मूरी एक्सप्रेस से रात के साढ़े ग्यारह-बारह बज रहे होंगे। हम लोग नए साल का जश्न मनाने में मग्न थे। खाना-पीना, नाच-गाना–ज़िन्दगी जैसे दो पहियों पर दौड़ रही थी–वक्त से आगे निकल जाने की होड़ में। सामने की बर्थ पर बैठे तीन आर्मी जवान लगातार तानाकशी कर रहे हैं–यह बात भी हमसे छिपी नहीं थी पर स्थिति को हम नज़रन्दाज कर रहे थे। नशे में धुत जवान क्या बोलते समझाते उन्हें। हम लोग ट्रेन में चढ़े उससे पहले ही वे वहां बैठे थे–पिछले 12 घंटे से लगातार शराब पीना-पिलाना हम देख रहे थे। नशे में धुत घूरती आंखें जैसे सब निगल लेना चाहती थीं। जानते-बूझते भी सब छोड़ देना चाहते थे।

नई दिल्ली स्टेशन आ गया तो सभी एक-एक उतरने लगे–सभी लड़कियां उतर चुकी थीं। मैं और रमा सामान लेकर उतर ही रहे थे कि उतरते समय उन तीन में एक सरदार ने रमा को अड़ंगी मारकर गिराने की कोशिश की और वो लड़खड़ा गई। सरदार ने रमा को कमर में हाथ डालकर पकड़ लिया और उसकी जांघों को दबा दिया। मैं और रमा तिलमिला गए थे–उसने सरदार को एक थप्पड़ रसीद कर दिया जिससे चिढ़कर वह रमा पर झपट पड़ा। मेरी चीख निकल गई। अब सोचने का समय नहीं था–रमा और मैं दोनों उस पर टूट पड़े और घसीटते हुए उसे बाहर ले आए। पीछे-पीछे उसके साथी भी नशे में धुत उतर पड़े।

> औरतों के साथ किसी भी तरह की छेड़खानी, यौन-हिंसा एक अपराध है जिसके लिए अपराधियों को सज़ा हो सकती है। फब्तियां कसना, घूरना, भद्दे इशारे, अश्लील गाने, चीजें दिखाना, बातें आदि हरकतें यौन-हिंसा का ही रूप हैं। औरतों को इसके खिलाफ़ आवाज़ उठानी ही होगी।

स्टेशन पर जब सबको पता लगा तो सभी हैरान रह गए–एक बार तो समझ में नहीं आया कि क्या करें। रेलवे-गार्ड, पुलिसवाला सभी इस घटना को सहज ले रहे थे कि सभी को गुस्सा आ गया–बावज़ूद हर कोशिश के हम उन लोगों का कुछ नहीं कर सके उस वक्त और पुलिस की मिली भगत से वे लोग चलती गाड़ी में सवार हो गए। हम लोग सिर्फ उनका नाम और बैच नम्बर ही नोट कर पाए। चार-घंटे लगे हमें उन लोगों के खिलाफ़ शिकायत दर्ज़ करवाने में।

कारण क्या था?

वास्तव में लोग समझ ही नहीं पा रहे थे कि लड़की के साथ छेड़खानी करना भी कोई अपराध

होता है। लगातार रेल अधिकारी हो या पुलिस वाला एक ही बात दोहरा रहे थे 'अरे बहनजी ऐसा तो होता ही रहता है—उतरते में हाथ लग गया होगा। ट्रेन का झटका खाकर लड़खड़ा गया होगा—पीए तो हुए ही है।" ट्रेन में शराब पीना भी उनके लिए जैसे कोई बड़ी बात नहीं थी—पहले तो कोई रिपोर्ट तक लिखने को तैयार नहीं था—सबके शोर मचाने और उनके खिलाफ़ रिपोर्ट लिखाने की धमकी देने पर कार्यवाही की गई। हमें यह देखकर और भी दुख हुआ कि दूसरे लोग तमाशबीन बने हुए थे जैसे इस सबसे उनका कोई मतलब नहीं था, किसी ने भागते हुए उन अपराधियों को पकड़ने या जवाब तलब करने की जरूरत नहीं समझी।

आगे भी हम लोग चुप नहीं रहे। जागोरी के साथ-साथ अन्य संस्थाओं ने भी मिलकर इस संघर्ष में हमारा साथ दिया और आखिर जीत हमारी हुई। उस व्यक्ति (सरदार) और उसके दो साथियों को उनकी रेजीमेंट से बर्खास्त कर दिया गया व दिल्ली हाज़िर किया गया। वे हमसे (जागोरी में) माफ़ी मांगने आए, पर माफ़ी मांगना ही काफ़ी नहीं। उन्हें आज अपने बीवी बच्चों का ख्याल आ रहा है। इस तरह की बेज़ा हरकत करते समय उन्हें औरत की मर्यादा का ख्याल क्यों नहीं आया? हमारे इस सवाल का उनके पास कोई जवाब नहीं था।

आज उन तीनों के खिलाफ़ मिलिटरी कोर्ट में एक मुकदमा और जांच-कार्यवाही चल रही है।

संघर्ष जारी रहेगा

यहीं हमारी संघर्ष यात्रा समाप्त नहीं हो जाती। हमने आगे भी इस घटना को आधार बनाकर एक नुक्कड़ नाटक का रूप दिया। इस नाटक में दो अन्य सीन भी थे जो एक साधू द्वारा ट्रेन में औरत को छेड़ने और शराबी लोगों द्वारा लड़कियों पर फब्तियां कसने की घटना को लेकर थीं। नाटक के तीनों ही सीन या दृश्य इस यौन-शोषण के खिलाफ़ औरत की चुप्पी तोड़ने की प्रेरणा देते हैं।

इसी घटना से प्रेरणा लेकर हमने एक रेल आंदोलन की शुरूआत भी की है जिसमें हमारी पूरी ताकत इस बात पर थी कि औरतों को पता चले कि इस तरह की छेड़खानी यौन-हिंसा एक अपराध है उसके लिए अपराधियों को सजा हो सकती है। फब्तियां कसना, घूरना, भद्दे इशारे, अश्लील गाने, चीज़ें दिखाना, बातें आदि हरकतें यौन-हिंसा का ही रूप हैं। औरतों को इसके खिलाफ़ आवाज़ उठानी ही होगी।

साथ ही पुलिस व रेल अधिकारियों को भी इसके खिलाफ़ कार्यवाही करने पर मज़बूर करना होगा। इस आंदोलन की शुरूआत आठ मार्च महिला दिवस पर नई दिल्ली रेलवे स्टेशन पर की गई। हमें यात्रियों रेल अधिकारियों और जनता का पूरा सहयोग मिला।

अच्छा लगा देखकर कि लोगों ने इसमें पूरी रूचि ली, जानकारी ली, हमारे पोस्टर, पैम्फलेट/पर्चे ध्यान से पढ़े।

हममें आशा की नई किरणें जाग उठीं और हम फ़ैसला कर बैठे कि इस आंदोलन को जारी रखेंगे—हर महीने आठ तारीख को इसी तरह स्टेशनों पर पोस्टर एवं पर्चे बांटकर लोगों में चेतना जगाने का काम ज़ारी रखेंगे।

(क्रमशः पृष्ठ 31 पर)

हम चुप नहीं रहेंगे

(पृष्ठ 28 का शेष)

हम जानते हैं कि यह एक मुश्किल काम है, लेकिन असंभव नहीं। अलग-अलग राज्यों की संस्थाओं से भी हमें सहयोग और हौसला मिला है। हम आप सबका सहयोग इस आंदोलन को चलाने के लिए मांग रहे हैं ताकि पूरी ताकत, जोश और हिम्मत के साथ ज्यादा से ज्यादा लोगों में यह चेतना जगाई जा सके कि रेलगाड़ियों में या आम जगहों पर यौन-हिंसा आम बात नहीं बल्कि जुर्म है जिसके लिए सज़ा हो सकती है। □

मानव अधिकार और महिलाएं

सुहास कुमार

हम आज अक्सर यह बात सुनते हैं कि महिलाओं को उनके बुनियादी मानव अधिकार नहीं मिलते। आखिर यह अधिकार हैं क्या?

कुछ खास मानव अधिकार

हर इंसान के पैदा होते ही कुछ अधिकार बनते हैं, यह उन्हें मिलने ही चाहिए।

- हर इंसान चाहे वह किसी जाति, रंग, लिंग, भाषा, धर्म, देश राजनैतिक मत का हो उसके साथ कहीं भी कोई भेदभाव नहीं बरता जाएगा।
- हर इंसान को जिंदा रहने, आज़ादी से रहने और सुरक्षा मिलने का अधिकार है।
- गुलामी और दासता से छुटकारा पाने का अधिकार।
- जुल्म, ज़ोर ज़बर्दस्ती, शारीरिक और मानसिक तकलीफ़, अपमानित होने के हालातों से छुटकारा पाने का अधिकार है।
- कानून के सामने बराबरी का दर्जा, बराबरी से कानूनी मदद और इंसाफ़ पाने का हक़।
- मनमानी गिरफ्तारी या हवालात में बंद करना या देश निकाला देना गलत है।
- सबको एक अपना कोना अपनी जगह चाहिए। घर, परिवार के अंदर भी यह मिलना चाहिए। दूसरों के बीच दखल देना, दूसरों के पत्र पढ़ना गलत है।
- हर इंसान को इज्ज़तदार ज़िंदगी बिताने का हक़ है।
- अपनी मर्ज़ी से शादी करने, परिवार बनाने का हक़ है।
- पैसा व माल-भत्ता कमाने, जमीन खरीदने का अधिकार है।
- अपनी बात कहने, अपना धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक नज़रिया बताने का हक़ सभी को है।
- शांति से सभा, धरना, रैली करने का हक़।
- सरकार यानी शासन और प्रशासन (सरकारी नौकरियों) में बराबरी से भाग लेने का हक़।
- सभी सरकारी अर्ध सरकारी व गैर सरकारी योजनाओं तक बराबर की पहुंच।

- समाज में सुरक्षित ढंग से रहने का हक़।
- रोज़गार का हक़, बराबर के काम के लिए बराबर का मेहनताना, ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार, उसमें हिस्सा लेने का अधिकार।
- आराम व मनोरंजन का हक़।
- शिक्षा और जानकारी पाने का हक़।
- सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में भागीदारी।
- शरीर और मन से स्वस्थ ज़िंदगी बिताने का हक़।

हरेक का यह भी हक़ बनता है कि वह ऐसे समाज में रह सके जहां ऊपरी सभी हक़ और सुविधाएं उसे मिल सकें। यह बहुत ज़रूरी है कि हर कोई यह सब जाने। अधिकार बहुत नज़दीकी से जुड़े होते हैं। अक्सर जब लोग अपने कर्तव्य नहीं करते हैं तो दूसरे को उसके अधिकार नहीं मिल पाते हैं।

महिलाओं के मानव अधिकार

बहुत पुरानी बात तो नहीं जानते, लेकिन जब से इतिहास लिखा गया है महिलाओं की स्थिति कमज़ोर ही रही है। चाहे परिवार में देखें या फिर समाज में, अर्थव्यवस्था में या राजनीति में, महिलाओं की स्थिति दिन-ब-दिन कमज़ोर ही हुई है। आज भी उनको उनके कानूनी और दूसरे हक़ नहीं मिलते। मानव अधिकार तो दूर की बात है।

ऊपर दिए गए सब अधिकार तो महिलाओं को इंसान होने के नाते मिलने ही चाहिए, लेकिन एक महिला होने के नाते भी उसके कुछ ख़ास अधिकार हैं। आज भी हमारे समाज में कन्या शिशु अनचाही ही है। कन्या शिशु भ्रूण हत्या, जन्म के तुरंत बाद हत्या या फिर बिना ठीक से देखभाल के उनके ज़िंदा रहने न रहने की कोई परवाह न होना, बाल विवाह, दहेज़, सती, विधवा का फिर से ब्याह न होने देना सभी रीति रिवाज़ों के चलते महिलाओं के मानव अधिकार उन्हें नहीं मिलते। रोज़गार, वेतन, कानूनी, आर्थिक, सामाजिक हर जगह महिलाओं के हाथ ग़ैर बराबरी ही आती है।

महिला होने के नाते उनके कुछ खास अधिकार हैं जैसे उनके शरीर व यौनिकता पर उनका अधिकार, कब और कितने बच्चे पैदा करें—फ़ैसला लेने का अधिकार, कौन सा गर्भ-निरोध का तरीका इस्तेमाल करें, गर्भपात कराने न कराने आदि का फ़ैसला लेने का हक़ उन्हें मिलना ही चाहिए। महिलाओं के साथ यौनिक छेड़छाड़, शीलभंग, बलात्कार, पति द्वारा जोर ज़बर्दस्ती सभी उनके बुनियादी अधिकारों पर हमला है। अब यह सभी अधिकार मानव अधिकारों की सूची में शामिल हो चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर यह माना गया है कि महिलाओं

के साथ कोई भी भेदभाव नहीं किया जाएगा।

अब सवाल यह उठता है कि इन मानव अधिकारों को लागू कौन करवाएगा? अगर किसी के साथ ज़्यादती हो रही है तो रपट कहां दर्ज करवाई जाए? मानव अधिकारों में मानवीय भावना का खास महत्व है। अगर हम एक दूसरे का आदर करते हैं ठेस नहीं पहुंचाते हैं तो इसका मतलब है कि हम दूसरों के मानव अधिकारों पर हावी नहीं हो रहे हैं। सबसे बुनियादी बात है मानव अधिकारों की जानकारी होना व उन्हें अच्छी तरह समझना, इनके लिए किसी को सज़ा देना और भी कठिन है।

फिर भी संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य राष्ट्रों को मानव अधिकार आयोग बनाने पर ज़ोर दिया गया है। भारत में भी करीब 4 साल से यह आयोग कारगर है। आजकल इसके अध्यक्ष न्यायाधीश एम.एन. वेंकटचालिया हैं। इनका हर माह एक सूचना-पत्र भी निकलता है। किसी प्रकार के अत्याचार होने पर सीधे इन्हें लिखा जा सकता है। राष्ट्रीय महिला आयोग भी अब इनके साथ मिलकर काम करेगा। शिकायत वहां भी पहुंचाई जा सकती है।

मानव अधिकार आयोग का काम है देश की सामाजिक दशा में सुधार। बच्चे, महिलाएं व पिछड़े वर्ग पर इन्हें खास ध्यान देना है। यह व्यक्तिगत ज़्यादती के केस भी लेते हैं। अभी हाल में इन्होंने राजस्थान के धौलपुर की गीता का केस लिया है। 18 साल की गीता जब ससुराल में सताए जाने से तंग आकर मायके आ गई तो उसके भाई ने उसे अंधेरी कोठरी में बंद कर दिया। पहनने को कपड़े नहीं ताकि भाग न सके, खाने को जूठन, पड़ोसियों को बताया कि वह पागल है, यह सिलसिला डेढ़ दो साल चला। एक गुमनाम पेटीशन मिलने पर मानव अधिकार आयोग की टीम ने उस लड़की को आधी बेहोशी की हालत में निकाला। लड़की अस्पताल में है और भाई फ़रार, उसकी तलाश ज़ारी है।

आप भी अपने बुनियादी मानव अधिकारों की मांग कर सकती हैं, घर, बाहर अधिकारों के प्रति जागरूक हों, औरों को जागरूक बनाएं। अधिकारों को पाने के लिए जरूरी लड़ाई भी लड़ें। कोशिश करें इंसान इंसान के हक़ न छीनें। यह हमारा अपने प्रति और पूरी स्त्री जाति के प्रति कर्तव्य भी बनता है। □

संतुलित आहार ज़रूरी : औरतों के लिए भी

स्वास्थ्य सुधार में पोषण और खानपान का ख़ास महत्व है। हम यह भी अच्छी तरह जानती हैं कि हमारी चर्चाएं शायद इतने विशाल विषय का बड़ा सतही जायज़ा नज़र आएं। भारत के विभिन्न समुदायों के सन्दर्भ में पोषण विषय पर विस्तृत चर्चा तथा क्यों कुछ खाद्य पदार्थ उनके आधुनिक रूपों से बेहतर हैं (जैसे पालिश किए हुए चावल की तुलना में सेला चावल, मैदे की तुलना में चोकर सहित आटा, साफ की हुई सफ़ेद चीनी की तुलना में खजूर या गन्ने का गुड़ और शक्कर अच्छे है) यह जानने के लिए केरल हस द्वारा सम्पादित पुस्तक 'द बनियन ट्री' खण्ड 2 अध्याय 6 देखें। हमारा मक़सद इस पर रोशनी डालना है कि पोषण तथा अन्य चिकित्सा पद्धतियां भी हमारी स्वः सहायता प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग थीं।

पोषण तथा दर्द

बहुत सी औरतें प्रायः यहां-वहां दर्द की शिकायत करती रहती हैं। क्यों? उनके दर्द के मुख्य कारण क्या हैं? चिकित्सा व्यवस्था औरतों के दुख-दर्द को क्यों समझ नहीं पाई है? हमारा मानना है कि औरतों की तकलीफों के कारण उनके आर्थिक और सामाजिक हालात में है। अधिकांश औरतें अपनी जरूरतों और भावनाओं की अभिव्यक्ति भी नहीं कर सकतीं। उनकी इच्छाओं तथा आकांक्षाओं को दबा दिया जाता है। वे चुपचाप घुटती रहती हैं।

हमें यह भी पता लगा कि अनेक दर्द उनके काम के बोझ और थकान की वजह से होते हैं इस तरह के दर्द तब ज़्यादा नहीं सताते यदि वह काम करने में आनन्द आ रहा हो तथा काम पूरा करके खुशी मिले। पोचम्मा (आंध्रप्रदेश के कृष्णापुर गांव) कहती है कि जब वह खुश होती है वह खूब ज़्यादा काम कर पाती है। हालांकि वह बहुत मेहनत करती है, पर उसका शरीर नहीं दुखता परन्तु अनेक औरतों के मामले में काम उबाऊ, एक जैसी निरन्तरता, थका देने वाली एक रसता के कारण बोझ मालूम देते हैं। जब काम कर्त्तव्य या मजबूरी बन जाते है तब उससे शरीर और

दिमाग थकने लगते हैं। दर्द के कारण, भिन्न-भिन्न आयु, सामाजिक वर्ग तथा क्षेत्रों जैसे शहर-देहात की औरतों में भिन्न होते हैं। तथापि स्थान और सामाजिक वर्ग को पार करके कमर दर्द, सिर दर्द, जोड़ों का दर्द, छाती में दर्द लगभग सभी

औरतें महसूस करती हैं। परिवार के सदस्य इन तकलीफ़ों की तरफ ख़ास ध्यान नहीं देते। औरतें आराम करें तो अपराधी महसूस करती हैं इसलिए वे तब तक नहीं रुकतीं जब तक कि वास्तव में वे गिरने न लगें। परिवार के मर्द व अन्य सदस्य भी औरतों की तकलीफ़ों की तरफ़ तभी ध्यान देते हैं जब वे दर्द के कारण अपनी "सामान्य जिम्मेदारियां" निभाने में असफल रहती हैं।

अगर औरत इलाज के लिए जाती भी है तो उसे दर्द की गोलियां देकर आराम करने की सलाह दी जाती है। दर्द की गोलियां सिर्फ़ थोड़ी देर को राहत देती हैं लेकिन दीर्घकालिक दर्द के कारणों को दूर नहीं करतीं। इसलिए वह दर्द फिर लौट आता है। कभी-कभी दर्द की गोलियां भी फ़ायदा नहीं पहुंचाती क्योंकि या तो अधिक खुराक की जरूरत होती है या अधिक शक्तिशाली दवाई की। जहां तक आराम का सवाल है एक स्थानीय औरत ने ठीक कहा "मुझे तो मर के ही आराम मिलेगा।" उसका विचार था कि औरत के लिए आराम करना तो नामुमकिन है क्योंकि पानी, चारा, ईंधन लाना, बच्चे संभालना, पशुओं की देखभाल, घर और खेत का काम यह सभी उसे दिन भर करना पड़ता है।

हमारे अध्ययन में हमने पाया कि कई उदाहरणों में पीठ के दर्द का सम्बन्ध शरीर में खून की या लौह तत्व की कमी से था। भोजन में सही मात्रा में खनिज तत्वों (केल्शियम, मेगनेशियम सबसे अहम हैं) की कमी से हड्डियां और मांसपेशियां कमज़ोर पड़ जाती हैं। ग़रीबी और सामाजिक-सांस्कृतिक कारणों से औरतें पूरी मात्रा में खाना नहीं खाती और न ही उनका खाना संतुलित

असंतुलित भोजन, बहुत ज़्यादा मेहनत और शारीरिक व्यायाम की कमी—तमाम कारण तरह-तरह के दर्दों को जन्म देता है।

होता है।

इसी प्रकार से गर्भ के दौरान टांगों में बांयटे/ऐंठन खनिज पदार्थों की कमी से होते हैं। यदि खाने में पर्याप्त खनिज नहीं होते तो गर्भ का बालक अपनी बढ़त के लिए माता के शरीर से खनिज चूस लेता है। महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ छिलके वाले अनाज में होते हैं। अनाज के बाहरी छिलके में खनिज, विटामिन और थोड़ा सा प्रोटीन होता है। सफेद पालिश किया हुआ चावल और सफ़ेद आटा जो प्रायः औद्योगिक समाज काम में लाते हैं, महत्वपूर्ण खनिज पदार्थ खो चुके होते हैं। खनिज पदार्थों की कमी वाला खाना खाने से ही हड्डियों की कमज़ोरी व अन्य कमज़ोरी तथा ह्रास करने वाली बीमारियां होती हैं।

बग़ैर पालिश वाले अनाज और दालों का उपभोग बढ़ाने के अलावा औरतों को दाल में खूब सारी हरी पत्तेदार सब्ज़ियां मिलाने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जैसे मेथी के पत्ते हागड़ा या हथिया या अगस्त्य सहजन की पत्तियां, मीठा नीम, बथुआ और चौलाई के पत्ते।

जब शरीर अधिक अम्ल (गर्मी) या अन्य विषैले तत्व बाहर नहीं निकाल सकता तो कई तरीके से

यह असंतुलन दिखलाई पड़ता है। कुछ लोगों में यह पेटदर्द के रूप में दिखता है, कुछ को पेशाब में जलन या सिरदर्द हो सकता है। यह शायद वंशानुगत कारणों से हो सकता है। कुछ और में यह असंतुलन जोड़ों का दर्द पैदा कर सकता है। अगर दिये में बहुत ज़्यादा तेल हो तो भक भक करके बुझ जाता है इसी तरह अगर शरीर में बहुत ज़्यादा गर्मी हो तो दर्द होते हैं।

शरीर में अम्ल या तेज़ाबी तत्व अधिक पैदा होने का कारण, असंतुलित भोजन और शारीरिक

व्यायाम की कमी है। जोड़ों के दर्द की शुरुआत के समय ही गर्मी पैदा करने वाले खाद्य पदार्थ खाने कम कर देने चाहिए तथा वे खाद्य पदार्थ खाने चाहिए जो ठंडक दे। सौंफ़ और जीरा ठंडी तासीर के कारण शुरूआत के समय शरीर से गर्मी पैदा करने वाले तत्वों को खत्म करने की प्रक्रिया ढीली पड़ जाती है। तब यदि तुरन्त ही खान पान में बदलाव नहीं लाया गया और व्यायाम शुरू नहीं किया गया तो जोड़ टेढ़े मेढ़े हो सकते हैं और उन्हें हिलाना-डुलाना भी मुश्किल हो जाता है।

माहवारी सदा के लिए बंद होने के समय और माहवारी चक्र के अन्त में औरतों को ये दर्द अधिक सताते हैं। इसका कारण है कि शरीर में ऐस्ट्रोजन हारमोन का स्तर गिर जाता है। ये हारमोन स्टेरॉयड भी हैं और इनका रासायनिक रूप कॉर्टीसौन से मिलता जुलता है। उनके असर से सूजन कम होती है।

इन दर्दों के लिए वे वनस्पतियां जो सूजन घटाती हैं फायदेमंद हैं

- जेठीमध/लिकोरिस काढ़ा।
- जासुन्द आधा कप दूध (यदि दूध न हो तो पानी) में एक छोटा चम्मच ज़ीरे के साथ 4-5 फूल।

  ध्यान रहे कि ये पौधे ऐस्ट्रोजन की तरह हैं तथा माहवारी समाप्त होने के समय के आम लक्षणों जैसे शरीर में गर्मी की लपट लगना या योनि सूखी हो जाना को कम करते हैं।
- जोड़ों का दर्द कम करने में गुरकामा भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है क्योंकि इस वनस्पति से न सिर्फ़ आवश्यक खनिज मिलते हैं बल्कि मूत्र बढ़ाती है, मांस पेशियों का तनाव और खिंचाव कम करती है हल्की नींद लाती है और तासीर ठंडी हैं।

  बढ़ती उम्र के साथ लचीलापन क़ायम रखने के लिए चलते फिरते रहना ज़रूरी है, लेकिन साथ ही भारी काम से छुट्टी मिल जानी चाहिए। अन्त में स्वस्थ खुराक, उम्र और शक्ति के हिसाब से जीने का ढंग और पर्याप्त आराम का कोई और विकल्प नहीं है। □

साभार–टच मी टच मी नॉट

अनुवाद–वीणा शिवपुरी

हमारा पन्ना

सबला

लड़की लड़का एक समान

मानो हमारी बात जहान
लड़की लड़का एक समान
लाड प्यार से बेटी पालें
पढ़ना लिखना उसे सिखालें
वो भी करले काम महान
लड़की लड़का एक समान

पूर्वजों की सीख

सतीशराज पुष्करणा

दो सीधी-सादी बिल्लियों में रोटी के बंटवारे को एक सफ़ेदपोश बन्दर निबटाने तथा बीच-बचाव करने एक तराज़ू लेकर आ गया। उसी पुरानी पारम्परिक धूर्त चाल की पुनः श्री गणेश। कभी एक पलड़ा भारी तो कभी दूसरा। कभी इधर की रोटी छोटी, तो कभी उधर की। बंटवारे की पूरी रोटी धीरे-धीरे बन्दर महाशय का ग्रास बन गई।

दोनों बिल्लियां जो अपने पूर्वज़ों से बन्दर की इस पारम्परिक चाल को भली-भांति समझे हुए थीं—एकाएक जब तक कि बन्दर संभले बिल्लियों का इक्कट्ठा हमला और बन्दर का काम तमाम।

कई दिनों बाद मांसाहारी भोजन मिलने से दोनों बिल्लियां खुशी-खुशी अपने-अपने घर की ओर यह कहते हुए बढ़ी जा रही थीं—"पूर्वजों की सीख सदैव लाभकारी होती है।" □

लड़कियां सवाल पूछ रहीं हैं

जुगमिन्दर तायल

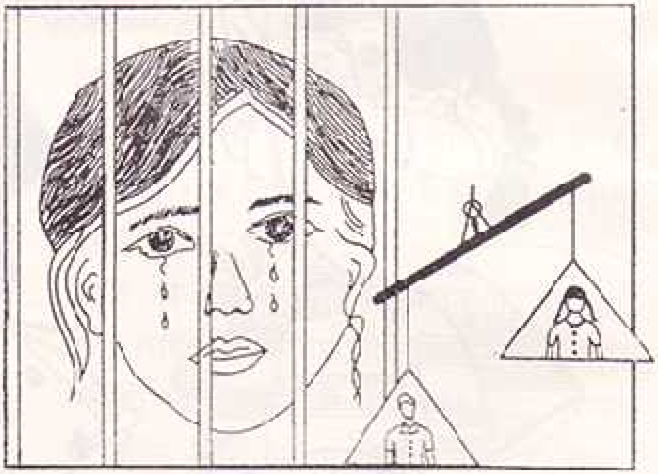

लड़कियां सवाल पूछ रही हैं।

वे पूछ रही हैं
हमारा जन्म कहां से हुआ

वे पूछ रही हैं
रोटियां, तरकारी, फलों में
हमारा हिस्सा कम क्यों है?

वे पूछ रही हैं
हमारे कपड़े-खिलौने
इतने बदरंग क्यों हैं?

वे सवाल पूछ रही हैं
भाई की तुलना में
हमारा स्थान घर में कहां है?

लड़कियां
सवाल पूछ रही हैं
और बहुत कुछ जानना चाहती हैं?

वे जानना चाहती हैं
अपनी पसन्द के कपड़े
पहनने का हक हमें क्यों नहीं है?

वे जानना चाहती हैं
अपनी रुचि की किताबें
पढ़ने का अवसर हमें क्यों नहीं है?

वे जानना चाहती हैं
अपनी मनचाही सड़कों पर
चलने की आज़ादी हमें क्यों नहीं है?

वे जानना चाहती हैं
अपनी समझ के साथी
चुनने का अधिकार हमें क्यों नहीं है?

लड़कियां
कितने सवाल पूछ रही हैं
सवाल पूछना हक मांगना है
सज्जनों।
लड़कियां अपने हक मांग रही हैं?

बो गए–
नए बीज।
ज़िन्दगी की रेत पर
अनुभवों के पांव–
बस गए गांव।

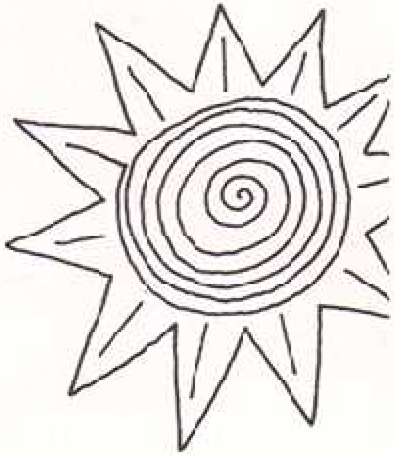

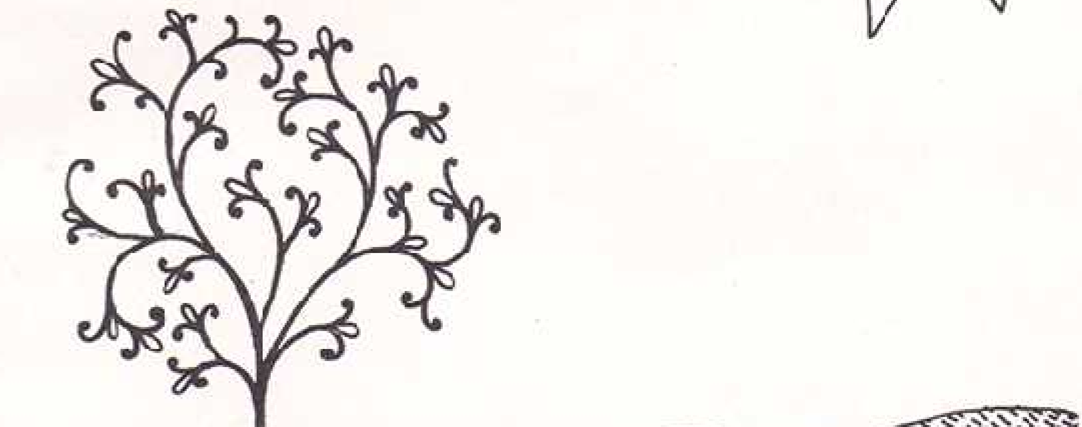

साभार (जागोरी डायरी 98)

उसके खुरदुरे हाथों में
रख दी गयी एक चिकनी किताब
उसने उसे सिर से लगाया
और सारा घर खोज आया
पर उसके रखने के योग्य स्थान उसने नहीं पाया—
आले पर चुहचुहाती ढेबरी थी
छप्पर का फस अधसड़ा काला था
उसकी खपचियां घुनायी थीं
वहां खोंसता भी कैसे?
कठबक्से में लिसलिसा नोन, तेल, गुड़ था
मोर्चा लगे कनस्तर में नकई थी।
कहां रखे वह रंगीन चिकनी किताब जो उसे
बहुत सलोनी लग रही थी
जैसे गर्म ताजी राब।

उसने उसे बार-बार सूंघा
बार-बार सहलाया, दुलराया,
फिर एक हांडी में रख
खूंटी पर टांग आया
दूसरे दिन जब वह खेत से आया
तब उसने किताब को चूहों द्वारा
कुतरा हुआ पाया।
वह रोआंसा हुआ, घबराया,
गम के मारे फिर सरकारी मदरसे नहीं आया।
खुद को कोसता रहा—
राम जी की मरजी जो पढ़ नहीं पाया।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना